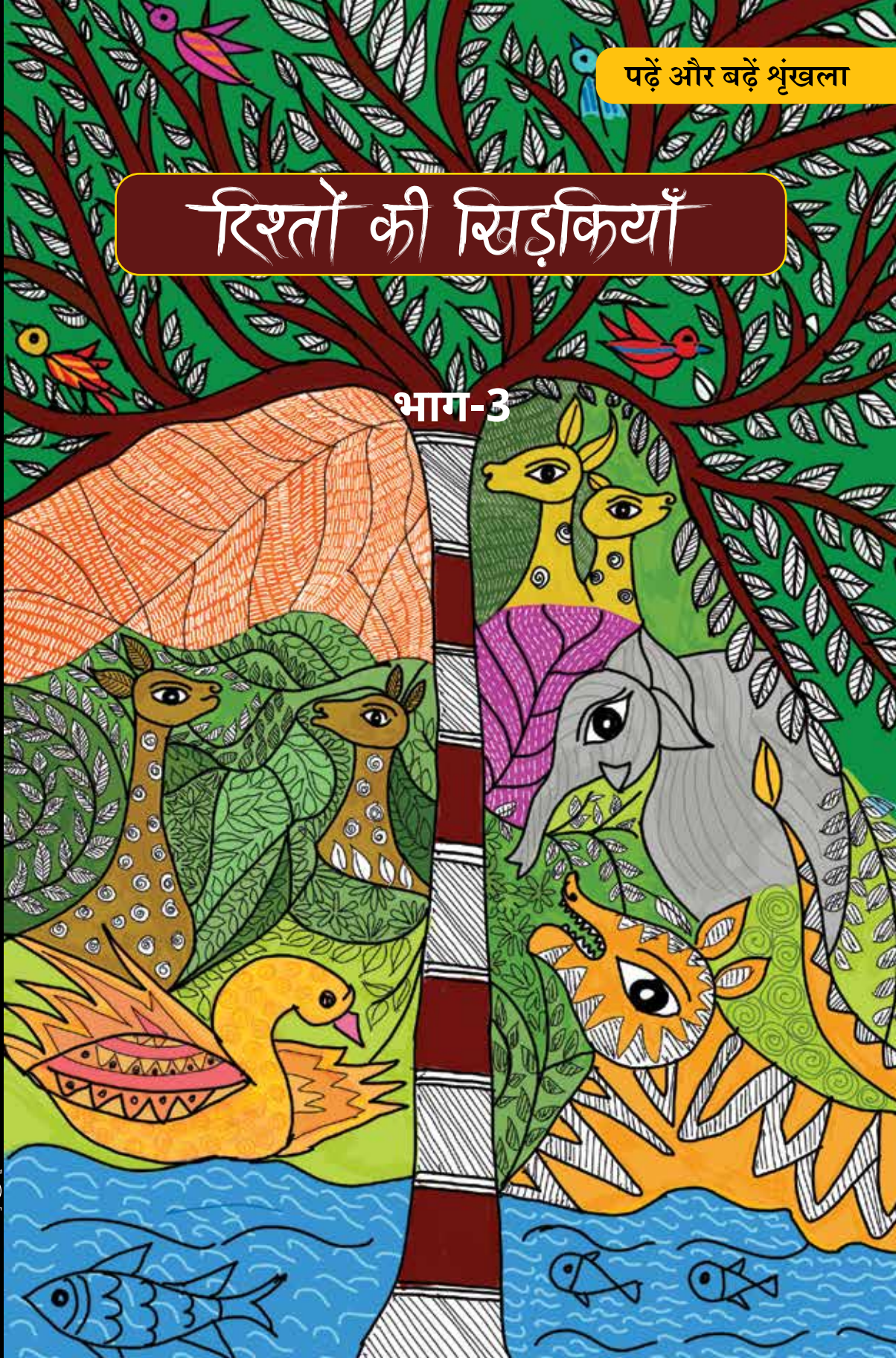


रिश्तों की खिड़कियाँ

भाग-3





एक कदम स्वच्छता की ओर

पढ़ें और बढ़ें शृंखला

रिश्तों की खिड़कियाँ

भाग-3



विद्यया ऽ मृतमश्नुते



एन सी ई आर टी
NCERT

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

21192 – रिश्तों की खिड़कियाँ, भाग-3

ISBN 978-93-5292-813-2

प्रथम संस्करण

सितंबर 2024 भाद्रपद 1946

PD 3T BS

© राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण
परिषद्, 2024

₹ 145.00

एन.सी.ई.आर.टी. वॉटरमार्क 80 जी.एस.एम.
पेपर पर मुद्रित।

सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और
प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग, नयी दिल्ली
110 016 द्वारा प्रकाशन प्रभाग में प्रकाशित
तथा गीता ऑफ़सेट प्रिंटर्स प्रा. लि., सी-90,
ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज़-1, नयी दिल्ली
110 020 द्वारा मुद्रित।

सर्वाधिकार सुरक्षित

- प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना इस प्रकाशन के किसी भाग को छापना तथा इलेक्ट्रॉनिकी, मशीनी, फ़ोटोप्रतिलिपि, रिकॉर्डिंग अथवा किसी अन्य विधि से पुनः प्रयोग पद्धति द्वारा उसका संग्रहण अथवा प्रचारण वर्जित है।
- इस पुस्तक की बिक्री इस शर्त के साथ की गई है कि प्रकाशन की पूर्व अनुमति के बिना यह पुस्तक अपने मूल आवरण अथवा जिल्द के अलावा किसी अन्य प्रकार से व्यापार द्वारा उधारी पर, पुनर्विक्रय या किराए पर न दी जाएगी, न बेची जाएगी।
- इस प्रकाशन का सही मूल्य इस पृष्ठ पर मुद्रित है। रबड़ की मुहर अथवा चिपकाई गई पत्ती (स्टिकर) या किसी अन्य विधि द्वारा अंकित कोई भी संशोधित मूल्य गलत है तथा मान्य नहीं होगा।

रा.शै.अ.प्र.प. के प्रकाशन प्रभाग के कार्यालय

एन.सी.ई.आर.टी. कैंपस
श्री अरविंद मार्ग
नई दिल्ली 110 016

फोन : 011-26562708

108, 100 फीट रोड
हेली एक्सपेंशन, होस्डेकेरे
बनाशंकरी III इस्टेज
बेंगलुरु 560 085

फोन : 080-26725740

नवजीवन ट्रस्ट भवन
डाकघर नवजीवन
अहमदाबाद 380 014

फोन : 079-27541446

सी.डब्ल्यू.सी. कैंपस
निकट धनकल बस स्टॉप पिनहटी
कोलकाता 700 114

फोन : 033-25530454

सी.डब्ल्यू.सी. कॉम्प्लेक्स
मालीगाँव
गुवाहाटी 781 021

फोन : 0361-2676869

प्रकाशन सहयोग

- अध्यक्ष, प्रकाशन प्रभाग : अनूप कुमार राजपूत
- मुख्य संपादक : विज्ञान सुतार
- मुख्य उत्पादन अधिकारी (प्रभारी) : जहान लाल
- मुख्य व्यापार प्रबंधक : अमिताभ कुमार
- सहायक उत्पादन अधिकारी : ओम प्रकाश

आवरण एवं चित्रांकन
बैनियन ट्री

आमुख

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद समय-समय पर विद्यार्थियों के लिए पाठ्यपुस्तकों के साथ-साथ अतिरिक्त पाठ्यसामग्री का प्रकाशन करती है। विद्यार्थियों के पास कुछ ऐसे विकल्प भी उपलब्ध होने चाहिए, जो पाठ्यपुस्तकों के अतिरिक्त हों। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में भी पठनसामग्री की उपलब्धता पर विशेष बल दिया गया है। इसे ध्यान में रखकर माध्यमिक स्तर के हिंदी विद्यार्थियों के लिए 'पढ़ें और बढ़ें' शृंखला की योजना बनाई गई। इसी योजना के तहत मध्य स्तर तथा माध्यमिक स्तर के हिंदी विद्यार्थियों के लिए 'रिशतों की खिड़कियाँ, भाग-3' नामक पुस्तक को तैयार किया गया है। इस पुस्तक में पशु-पक्षियों पर केंद्रित कहानियों और कविताओं का संचयन किया गया है। आशा है यह पुस्तक विद्यार्थियों में पढ़ने की संस्कृति विकसित करेगी तथा अध्यापकों सहित अन्य पाठकों को आमंत्रित करेगी।

पुस्तक की सामग्री-चयन और समीक्षा के लिए आयोजित कार्यशालाओं में उपस्थित होकर जिन विषय विशेषज्ञों तथा अनुभवी अध्यापकों ने अपने बहुमूल्य सुझावों द्वारा पुस्तक को उपयोगी बनाने में सहयोग किया है, परिषद उनके प्रति आभार व्यक्त करती है। यह पुस्तक परिषद के भाषा शिक्षा विभाग के हिंदी संकाय सदस्यों द्वारा किया गया एक सराहनीय प्रयास है।

निश्चय ही, पाठ्यक्रम तथा पाठ्यपुस्तकों का विकास एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है। अतः पुस्तक को और उपयोगी बनाने के लिए विद्यार्थियों, अध्यापकों और विशेषज्ञों के सुझावों का स्वागत है।

दिनेश प्रसाद सकलानी

निदेशक

नई दिल्ली

नवंबर 2023

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और

प्रशिक्षण परिषद



यह पुस्तक...

सभ्यता के आरंभ के साथ ही मनुष्य का पहला रिश्ता प्रकृति से कायम हुआ। और धीरे-धीरे सृष्टि के प्राणिजगत के साथ अपने रिश्तों का निर्वाह करते हुए उसने मानवीय रिश्तों का सृजन किया। ये रिश्ते काल के प्रवाह में धीरे-धीरे निर्मित और विकसित हुए। मानव समाज ने इन रिश्तों को अलग-अलग नाम दिए। आज ऐसे समाज की कल्पना नामुमकिन है जिसमें रिश्ते न हों। ये रिश्ते केवल मनुष्य-मनुष्य के बीच ही नहीं, अपने परिवेश के मनुष्येतर प्राणियों से भी बहुत गहरे और आत्मीय हैं। प्राणिजगत के साथ मनुष्य के इस साहचर्यजन रिश्ते ने मानव सभ्यता की एक अनूठी तस्वीर निर्मित की है। इन रिश्तों ने मनुष्य को भावनात्मक स्तर पर समृद्ध किया है और संवेदनात्मक स्तर पर उसकी चेतना का असीम विस्तार किया है। सभ्यता के उन्नयन में इन रिश्तों की ऐतिहासिक भूमिका रही है।

‘पढ़ें और बढ़ें’ शृंखला के अंतर्गत ‘रिश्तों की खिड़कियाँ’ (चार भागों में) पुस्तकों का निर्माण किया गया है। शृंखला के इस भाग-3 में पशु-पक्षियों पर केंद्रित रचनाएँ संग्रहित की गई हैं। वहीं भाग-1 में माँ केंद्रित रचनाएँ, भाग-2 में पिता केंद्रित रचनाएँ और भाग-4 में अन्य रिश्तों पर केंद्रित रचनाएँ सम्मिलित की गई हैं। इसका उद्देश्य किशोर वय के पाठकों को रिश्तों की अहमियत और रिश्तों की बदलती संवेदना से सिर्फ परिचित कराना ही नहीं, बल्कि यह बताना भी है कि रिश्ते कभी जड़ या ठोस नहीं होते, वे असीम भावनाओं से भरे होते हैं और इनमें विभिन्न सामाजिक परिवेश और परिस्थितियों के अनुकूल जीवन-व्यवहार को समझने की गहरी अंतर्दृष्टि होती है।

‘पढ़ें और बढ़ें’ शृंखला की इस कड़ी में पशु-पक्षियों से मनुष्य के संबंध की ऐसी कहानियाँ हैं जो किशोर वय के पाठकों को ध्यान में रखकर चुनी गई हैं। यहाँ गौर करने वाली बात यह है कि कुछ पशु-पक्षी सभ्यता के कथित विकास के क्रम में धीरे-धीरे हमारे रिश्तों के दायरों से बाहर होते गए हैं, इससे रिश्तों की हमारी दुनिया थोड़ी बेरौनक और संकुचित हुई है। इस शृंखला में ऐसे पशु-पक्षियों के साथ भी मनुष्य के रिश्तों की कहानियाँ शामिल हैं।



शृंखला की पहली कहानी कथाकार प्रेमचंद की 'दो बैलों की कथा' है जिसमें दो बैलों 'हीरा' और 'मोती' के माध्यम से पशु और मनुष्य के परस्पर प्रेम और विश्वास की व्यापकता और स्वाधीन होने की आकांक्षा को दर्शाया गया है। 'दुर्मुख खरगोश' परिस्थितिबध क्रोधी हो गए एक खरगोश की कथा है, जिसमें महादेवी वर्मा ने 'दुर्मुख' के क्रोध की विविध छवियों का चित्रण किया है। 'गुलेल का खेल' कहानी में पक्षियों के प्रति बोधराज की बदलती संवेदना के चित्र हैं। भीष्म साहनी की इस कहानी के अंत में बोधराज पक्षियों के प्रति अपनी क्रूरता के विपरीत मैना के चूजों को चील से बचाने का प्रयत्न करता है। फणीश्वरनाथ 'रेणु' की 'तँबे एकला चलो रे' कहानी में भैंस का उपेक्षित बच्चा 'पाड़ा' परस्पर आत्मीय व्यवहार से मनुष्य का सहयोगी बन जाता है और उनके लिए अपनी जान दे देता है। मोहन राकेश की कहानी 'गिरगिट का सपना' का 'गिरगिट' अपने गिरगिट होने से असंतुष्ट है। वह कोई अन्य जीव बनने के सपने देखता है। लेकिन जब सपना टूटता है तो वह गिरगिट रहकर ही अपने को खुश पाता है। 'मेहमान की वापसी' 'जॉली' नाम के कुत्ते और अजय के बीच धीरे-धीरे पनपने वाली आत्मीयता की कहानी है। 'जॉली' के घर आने पर, जो अजय उससे खौफ़ खाता है, वही अजय साथ रहते-रहते उससे ऐसे घुल-मिल जाता है कि उसका वापस जाना अजय को उदासी से भर देता है। रवींद्र कालिया की कहानी 'सुंदरी' एक घोड़ी की कहानी है। इसमें ज़हीर मियां और उनके परिवार के साथ 'सुंदरी' के आत्मीय रिश्तों के अनेक मार्मिक और दिलचस्प चित्र हैं। 'अरेबा-परेबा' उदयप्रकाश की लंबी कहानी है। कहानी में खरगोश के बच्चे और बाल मन का मनोवैज्ञानिक चित्रण है। कहानी यथार्थबोध की बदलती परिस्थितियों में पशु की स्निग्धता और मनुष्य की चतुराई को रूपक में ढालकर प्रस्तुत करती है। 'बाज़ार में रामधन' बैलों के अनुपयोगी होते जाने के दौर की कहानी है। कैलास बनवासी की यह कहानी छोटे भाई के दबाव में मजबूरन बैलों को बेचने के लिए बाज़ार ले जाने का मार्मिक दृश्य उपस्थित करती है। कहानी के अंत में बैलों के साथ रामधन के आत्मीय रिश्ते को पाठक गहराई से महसूस करता है।



इस पुस्तक में अंग्रेजी भाषा से अनूदित तीन कहानियाँ शामिल हैं। ऑस्कर वाइल्ड की प्रसिद्ध कहानी 'द हैप्पी प्रिंस' का 'मूर्ति और मनुष्य' शीर्षक से अनुवाद है। यह कहानी राजकुमार की मूर्ति और गौरेए के विश्वासपूर्ण आत्मीय संबंध को चित्रित करती है, जिसमें गहरी मार्मिकता है। दूसरी कहानी रूसी भाषा के प्रसिद्ध कथाकार चेखव की 'दुःख' है। इस कहानी में गाड़ीवान के दुःख की कथा सुनने को जब कोई तैयार नहीं होता तो अंत में वह अपना दुःख अपने घोड़े से कहता है और सुकून पाता है। पुस्तक की अंतिम कहानी एक जंगली जानवर 'भालू' की है। 'भालू' के बहाने फाकनर की यह कहानी हमें सिखाती है कि जंगल में पशुओं के साथ हमें कैसा बर्ताव करना चाहिए।

इस पुस्तक में मनुष्य और पशु-पक्षियों के रिश्तों के विविध रूप हैं। कहीं मनुष्य और पशु के बीच परस्पर प्रेम की व्यापकता है तो कहीं चकित कर देने वाली भावनात्मक विविधता। किसी कहानी में उपेक्षित समझे गए पशु आत्मीय व्यवहार के कारण सहयोगी बन गए दिखाई देते हैं तो किसी में पशु को परिस्थितियों के अनुकूल तालमेल बैठाने देखते हैं। एक कहानी पशु के प्रति नफरत को प्रेम में बदलते हुए दिखाती है तो दूसरी गौरेए के स्नेह से मूर्ति को सजीव रूप लेते हुए। इस कड़ी की सभी कहानियों के केंद्र में प्रेम की भावना प्रमुख है। कहानियों का क्रम कथाकारों की वरिष्ठता क्रम में है। इस क्रम में पहले हिंदी के कथाकार हैं फिर विदेशी भाषा के कथाकार।

ये कहानियाँ मनुष्य और पशु-पक्षियों के बीच के रिश्तों को विविध रूप में अभिव्यक्त करती हैं। आशा है कि हमारे पाठक इन रचनाओं को पढ़कर इनका मर्म समझेंगे तथा जीवन में पशु-पक्षियों के प्रति रिश्तों की गहराई और व्यापकता का उचित आशय ग्रहण कर सकेंगे। इस पुस्तक पर आपके सुझावों का स्वागत रहेगा।

संध्या सिंह

प्रोफेसर

भाषा शिक्षा विभाग

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद





आओ मिल-जुल कर
रचें एक सुंदर संसार

पुस्तक निर्माण समूह

समन्वयक

संध्या सिंह, प्रोफेसर, भाषा शिक्षा विभाग, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद, नई दिल्ली

सहयोग

प्रेम कुमार तिवारी, एसोसिएट प्रोफेसर, दयाल सिंह कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

श्याम सिंह सुशील, हिंदी लेखक, ए-13, दैनिक जनयुग अपार्टमेंट्स, वसुंधरा एनक्लेव, दिल्ली

हिरण्य हिमकर, असिस्टेंट प्रोफेसर, रामानुजन कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली



आभार

परिषद, रचनाकारों, उनके परिजनों, संस्थानों एवं प्रकाशकों के प्रति आभारी है जिन्होंने अपनी रचनाओं को प्रकाशित करने की अनुमति प्रदान की।

पुस्तक निर्माण संबंधी कार्यों में तकनीकी सहयोग एवं अन्य प्रकार के सहयोग के लिए परिषद विभाग में कार्यरत जे.पी.एफ. पूजा झा, चंदन कुमार, आशीष कुमार, भावना और बजरंग बली कहॉर; संविदा पर कार्यरत डी.टी.पी. ऑपरेटर नरेश कुमार और सगीर अहमद की आभारी है।

परिषद, पांडुलिपि को एक आकर्षक पाठ्यपुस्तक के रूप में प्रकाशित करने के लिए राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद के प्रकाशन प्रभाग के सदस्यों के प्रति धन्यवाद ज्ञापित करती है। हम पुस्तक के संपादन कार्य के लिए दिनेश वशिष्ठ, संपादक (संविदा) के प्रति आभारी है। इसके अलावा परिषद पुस्तक के ले-आउट एवं डिजाइन के लिए सुरेंद्र कुमार, प्रभारी, डी.टी.पी. प्रकोष्ठ और संविदा पर कार्यरत अजय कुमार प्रजापति, डी.टी.पी. ऑपरेटर के प्रति भी धन्यवाद ज्ञापित करती है।



विषय-सूची

आमुख		iii
यह पुस्तक...		v
1. दो बैलों की कथा	प्रेमचंद	1
2. दुर्मुख खरगोश	महादेवी वर्मा	15
3. गुलेल का खेल	भीष्म साहनी	22
4. तँबे एकला चलो रे	फणीश्वरनाथ रेणु	31
5. गिरगिट का सपना	मोहन राकेश	46
6. मेहमान की वापसी	मालती जोशी	50
7. सुंदरी	रवींद्र कालिया	57
8. अरेबा परेबा	उदय प्रकाश	70
9. बाज़ार में रामधन	कैलाश बनवासी	94
10. मूर्ति और मनुष्य	ऑस्कर वाइल्ड	107
11. दुख	अंतोन चेखव	117
12. भालू	विलियम फॉकनर	125
लेखक परिचय		128–134





मिल-जुल कर स्कूल में जाएँ, साथ पढ़ें और
साथ में खाएँ। रंग-बिरंगी प्यासी दुनिया,
साथ मिलकर इसे सजाएँ।



दो बैलों की कथा

प्रेमचंद

प्रेमचंद की कहानी 'दो बैलों की कथा' मनुष्य और पशु के परस्पर प्रेम की मार्मिक कथा है। दोनों बैलों हीरा और मोती से जितना प्रेम झूरी करता है, उतना ही प्रेम बैल झूरी से करते हैं। मनुष्य और पशु के आत्मिक संबंध की व्यापकता और स्वाधीन होने की आकांक्षा इस कहानी का आधार है।

जानवरों में गधा सबसे ज़्यादा बुद्धिहीन समझा जाता है। हम जब किसी आदमी को परले दरज़े का बेवकूफ़ कहना चाहते हैं, तो उसे गधा कहते हैं। गधा सचमुच बेवकूफ़ है या उसके सीधेपन, उसकी निरापद सहिष्णुता ने उसे यह पदवी दे दी है, इसका निश्चय नहीं किया जा सकता। गायें सींग मारती हैं, ब्याई हुई गाय तो अनायास ही सिंहनी का रूप धारण कर लेती है। कुत्ता भी बहुत गरीब जानवर है, लेकिन कभी-कभी उसे भी क्रोध आ ही जाता है; किंतु गधे को कभी क्रोध करते नहीं सुना, न देखा। जितना चाहो गरीब को मारो, चाहे जैसी खराब, सड़ी हुई घास सामने डाल दो,



उसके चेहरे पर कभी असंतोष की छाया भी न दिखाई देगी। वैशाख में चाहे एकाध बार कुलेल कर लेता हो; पर हमने तो उसे कभी खुश होते नहीं देखा। उसके चेहरे पर एक विषाद स्थायी रूप से छाया रहता है। सुख-दुख, हानि-लाभ, किसी भी दशा में उसे बदलते नहीं देखा। ऋषियों-मुनियों के जितने गुण हैं वे सभी उसमें पराकाष्ठा को पहुँच गए हैं; पर आदमी उसे बेवकूफ़ कहता है। सद्गुणों का इतना अनादर कहीं नहीं देखा। कदाचित् सीधापन संसार के लिए उपयुक्त नहीं है। देखिए न, भारतवासियों की अफ्रीका में क्या दुर्दशा हो रही है? क्यों अमरीका में उन्हें घुसने नहीं दिया जाता? बेचारे शराब नहीं पीते, चार पैसे कुसमय के लिए बचाकर रखते हैं, जी तोड़कर काम करते हैं, किसी से लड़ाई-झगड़ा नहीं करते, चार बातें सुनकर गम खा जाते हैं फिर भी बदनाम हैं। कहा जाता है, वे जीवन के आदर्श को नीचा करते हैं। अगर वे भी ईंट का जवाब पत्थर से देना सीख जाते तो शायद सभ्य कहलाने लगते। जापान की मिसाल सामने है। एक ही विजय ने उसे संसार की सभ्य जातियों में गण्य बना दिया।

लेकिन गधे का एक छोटा भाई और भी है, जो उससे कम ही गधा है, और वह है 'बैल'। जिस अर्थ में हम गधे का प्रयोग करते हैं, कुछ उसी से मिलते-जुलते अर्थ में 'बछिया के ताऊ' का भी प्रयोग करते हैं। कुछ लोग बैल को शायद बेवकूफ़ों में सर्वश्रेष्ठ कहेंगे; मगर हमारा विचार ऐसा नहीं है। बैल कभी-कभी मारता भी है, कभी-कभी अड़ियल बैल भी देखने में आता है। और भी कई रीतियों से अपना असंतोष प्रकट कर देता है; अतएव उसका स्थान गधे से नीचा है।

झूरी काछी के दोनों बैलों के नाम थे हीरा और मोती। दोनों पछाई जाति के थे— देखने में सुंदर, काम में चौकस, डील में ऊँचे। बहुत दिनों साथ रहते-रहते दोनों में भाईचारा हो गया था। दोनों आमने-सामने या आस-पास बैठे हुए एक-दूसरे से मूक-भाषा में विचार-विनिमय करते थे। एक, दूसरे के मन की बात कैसे समझ जाता था, हम नहीं कह सकते। अवश्य ही उनमें कोई ऐसी गुप्त शक्ति थी, जिससे जीवों में श्रेष्ठता का दावा करने वाला मनुष्य वंचित है। दोनों एक-दूसरे को चाटकर और सूँघकर अपना प्रेम प्रकट करते, कभी-कभी दोनों सींग भी मिला लिया करते थे— विग्रह के नाते से नहीं, केवल विनोद के भाव से, आत्मीयता के भाव से, जैसे दोस्तों में घनिष्ठता होते ही धौल-धप्पा होने लगता है। इसके बिना दोस्ती कुछ फुसफुसी, कुछ हल्की-सी रहती है, जिस पर ज्यादा विश्वास नहीं किया जा सकता। जिस वक्त ये दोनों बैल हल या गाड़ी में जोत दिए जाते और गरदन हिला-हिलाकर चलते, उस



वक्त हर एक की यही चेष्टा होती थी कि ज़्यादा-से-ज़्यादा बोझ मेरी ही गरदन पर रहे। दिन-भर के बाद दोपहर या संध्या को दोनों खुलते, तो एक-दूसरे को चाट-चूटकर अपनी थकान मिटा लिया करते। नाँद में खली-भूसा पड़ जाने के बाद दोनों साथ उठते, साथ नाँद में मुँह डालते और साथ ही बैठते थे। एक मुँह हटा लेता, तो दूसरा भी हटा लेता था।

संयोग की बात, झूरी ने एक बार गोई को ससुराल भेज दिया। बैलों को क्या मालूम, वे क्यों भेजे जा रहे हैं। समझे, मालिक ने हमें बेच दिया। अपना यों बेचा जाना उन्हें अच्छा लगा या बुरा, कौन जाने, पर झूरी के साले गया को घर तक गोई ले जाने में दाँतों पसीना आ गया। पीछे से हाँकता तो दोनों दाँ-बाँ भागते, पगहिया पकड़कर आगे से खींचता, तो दोनों पीछे को ज़ोर लगाते। मारता तो दोनों सींग नीचे करके हुँकारते। अगर ईश्वर ने उन्हें वाणी दी होती, तो झूरी से पूछते-तुम हम गरीबों को क्यों निकाल रहे हो? हमने तो तुम्हारी सेवा करने में कोई कसर नहीं उठा रखी। अगर इतनी मेहनत से काम न चलता था तो और काम ले लेते। हमें तो तुम्हारी चाकरी में मर जाना कबूल था। हमने कभी दाने-चारे की शिकायत नहीं की। तुमने जो कुछ खिलाया, वह सिर झुकाकर खा लिया, फिर तुमने हमें इस ज़ालिम के हाथ क्यों बेच दिया?

संध्या समय दोनों बैल अपने नए स्थान पर पहुँचे। दिन-भर के भूखे थे, लेकिन जब नाँद में लगाए गए, तो एक ने भी उसमें मुँह न डाला। दिल भारी हो रहा था। जिसे उन्होंने अपना घर समझ रखा था, वह आज उनसे छूट गया था। यह नया घर, नया गाँव, नए आदमी, उन्हें बेगानों-से लगते थे।

दोनों ने अपनी मूक-भाषा में सलाह की, एक-दूसरे को कनखियों से देखा और लेट गए। जब गाँव में सोता पड़ गया, तो दोनों ने ज़ोर मारकर पगहे तुड़ा डाले और घर की तरफ़ चले। पगहे बहुत मज़बूत थे। अनुमान न हो सकता था कि कोई बैल उन्हें तोड़ सकेगा; पर इन दोनों में इस समय दूनी शक्ति आ गई थी। एक-एक झटके में रस्सियाँ टूट गईं।

झूरी प्रातःकाल सोकर उठा, तो देखा कि दोनों बैल चरनी पर खड़े हैं। दोनों की गरदनो में आधा-आधा गराँव लटक रहा है। घुटने तक पाँव कीचड़ से भरे हैं और दोनों की आँखों में विद्रोहमय स्नेह झलक रहा है।



झूरी बैलों को देखकर स्नेह से गदगद हो गया। दौड़कर उन्हें गले लगा लिया। प्रेमालिंगन और चुंबन का वह दृश्य बड़ा ही मनोहर था।

घर और गाँव के लड़के जमा हो गए और तालियाँ बजा-बजाकर उनका स्वागत करने लगे। गाँव के इतिहास में यह घटना अभूतपूर्व न होने पर भी महत्वपूर्ण थी। बाल-सभा ने निश्चय किया, दोनों पशु-वीरों को अभिनंदन-पत्र देना चाहिए। कोई अपने घर से रोटियाँ लाया, कोई गुड़, कोई चोकर, कोई भूसी।

एक बालक ने कहा— ऐसे बैल किसी के पास न होंगे।

दूसरे ने समर्थन किया— इतनी दूर से दोनों अकेले चले आए।

तीसरा बोला, बैल नहीं हैं वे, उस जनम के आदमी हैं।

इसका प्रतिवाद करने का किसी को साहस न हुआ।

झूरी की स्त्री ने बैलों को द्वार पर देखा, तो जल उठी। बोली— कैसे नमकहराम बैल हैं कि एक दिन वहाँ काम न किया; भाग खड़े हुए।

झूरी अपने बैलों पर यह आक्षेप न सुन सका— नमकहराम क्यों हैं? चारा-दाना न दिया होगा, तो क्या करते?

स्त्री ने रोब के साथ कहा— बस, तुम्हीं तो बैलों को खिलाना जानते हो, और तो सभी पानी पिला-पिलाकर रखते हैं।

झूरी ने चिढ़ाया— चारा मिलता तो क्यों भागते?

स्त्री चिढ़ी— भागे इसलिए कि वे लोग तुम, जैसे बुद्धुओं की तरह बैलों को सहलाते नहीं। खिलाते हैं, तो रगड़कर जोतते भी हैं। ये दोनों ठहरे कामचोर, भाग निकले। अब देखूँ, कहाँ से खली और चोकर मिलता है! सूखे भूसे के सिवा कुछ न दूँगी, खाएँ चाहें मरें।

वही हुआ। मजूर को कड़ी ताकीद कर दी गई कि बैलों को खाली सूखा भूसा दिया जाए।

बैलों ने नाँद में मुँह डाला, तो फीका-फीका। न कोई चिकनाहट, न कोई रस! क्या खाएँ? आशा-भरी आँखों से द्वार की ओर ताकने लगे।

झूरी ने मजूर से कहा— थोड़ी-सी खली क्यों नहीं डाल देता बे?



‘मालकिन मुझे मार ही डालेंगी।’

‘चुराकर डाल आ।’

‘न दादा, पीछे से तुम भी उन्हीं की-सी कहोगे।’

दूसरे दिन झूरी का साला फिर आया और बैलों को ले चला। अबकी उसने दोनों को गाड़ी में जोता।

दो-चार बार मोती ने गाड़ी को सड़क की खाई में गिराना चाहा; पर हीरा ने संभाल लिया। वह ज्यादा सहनशील था।

संध्या-समय घर पहुँचकर उसने दोनों को मोटी रस्सियों से बाँधा और कल की शरारत का मजा चखाया। फिर वही सूखा भूसा डाल दिया। अपने दोनों बैलों को खली, चूनी सब कुछ दी।

दोनों बैलों का ऐसा अपमान कभी न हुआ था। झूरी इन्हें फूल की छड़ी से भी न छूता था। उसकी टिटकार पर दोनों उड़ने लगते थे। यहाँ मार पड़ी। आहत-सम्मान की व्यथा तो थी ही, उस पर मिला सूखा भूसा!

नाँद की तरफ़ आँखें तक न उठाईं

दूसरे दिन गया ने बैलों को हल में जोता, पर इन दोनों ने जैसे पाँव न उठाने की कसम खा ली थी। वह मारते-मारते थक गया; पर दोनों ने पाँव न उठाया। एक बार जब उस निर्दयी ने हीरा की नाक पर खूब डंडे जमाए, तो मोती का गुस्सा काबू के बाहर हो गया। हल लेकर भागा। हल, रस्सी, जुआ, जोत, सब टूट-टाट कर बराबर हो गया। गले में बड़ी-बड़ी रस्सियाँ न होतीं, तो दोनों पकड़ाई में न आते।

हीरा ने मूक-भाषा में कहा— भागना व्यर्थ है।

मोती ने उत्तर दिया— तुम्हारी तो इसने जान ही ले ली थी।

‘अबकी बड़ी मार पड़ेगी।’

‘पड़ने दो, बैल का जन्म लिया है, तो मार से कहाँ तक बचेंगे?’

‘गया दो आदमियों के साथ दौड़ा आ रहा है। दोनों के हाथों में लाठियाँ हैं।’

मोती बोला— कहो तो दिखा दूँ कुछ मज़ा मैं भी। लाठी लेकर आ रहा है।



हीरा ने समझाया— नहीं भाई! खड़े हो जाओ।

‘मुझे मारेगा, तो मैं भी एक-दो को गिरा दूँगा!’

‘नहीं। हमारी जाति का यह धर्म नहीं है।’

मोती दिल में ऐंठकर रह गया। गया आ पहुँचा और दोनों को पकड़ कर ले चला। कुशल हुई कि उसने इस वक्त मारपीट न की, नहीं तो मोती भी पलट पड़ता। उसके तेवर देखकर गया और उसके सहायक समझ गए कि इस वक्त टाल जाना ही मसलहत है।

आज दोनों के सामने फिर वही सूखा भूसा लाया गया। दोनों चुपचाप खड़े रहे। घर के लोग भोजन करने लगे। उस वक्त छोटी-सी लड़की दो रोटियाँ लिए निकली, और दोनों के मुँह में देकर चली गई। उस एक रोटी से इनकी भूख तो क्या शांत होती; पर दोनों के हृदय को मानो भोजन मिल गया। यहाँ भी किसी सज्जन का वास है। लड़की भैरो की थी। उसकी माँ मर चुकी थी। सौतेली माँ उसे मारती रहती थी, इसलिए इन बैलों से उसे एक प्रकार की आत्मीयता हो गई थी।

दोनों दिन-भर जोते जाते, डंडे खाते, अड़ते। शाम को थान पर बाँध दिए जाते और रात को वही बालिका उन्हें दो रोटियाँ खिला जाती।

प्रेम के इस प्रसाद की यह बरकत थी कि दो-दो गाल सूखा भूसा खाकर भी दोनों दुर्बल न होते थे, मगर दोनों की आँखों में, रोम-रोम में विद्रोह भरा हुआ था।

एक दिन मोती ने मूक-भाषा में कहा— अब तो नहीं सहा जाता, हीरा!

‘क्या करना चाहते हो?’

‘एकाध को सींगों पर उठाकर फेंक दूँगा।’

‘लेकिन जानते हो, वह प्यारी लड़की, जो हमें रोटियाँ खिलाती है, उसी की लड़की है, जो इस घर का मालिक है। यह बेचारी अनाथ न हो जाएगी?’

‘तो मालकिन को न फेंक दूँ। वही तो उस लड़की को मारती है।’

‘लेकिन औरत जात पर सींग चलाना मना है, यह भूले जाते हो।’

‘तुम तो किसी तरह निकलने ही नहीं देते। बताओ, तुड़ाकर भाग चलें।’

‘हाँ, यह मैं स्वीकार करता हूँ, लेकिन इतनी मोटी रस्सी टूटेगी कैसे?’



‘इसका एक उपाय है। पहले रस्सी को थोड़ा-सा चबा लो। फिर एक झटके में जाती है।’

रात को जब बालिका रोटियाँ खिलाकर चली गई, दोनों रस्सियाँ चबाने लगे, पर मोटी रस्सी मुँह में न आती थी। बेचारे बार-बार ज़ोर लगाकर रह जाते थे।

सहसा घर का द्वार खुला और वही लड़की निकली। दोनों सिर झुकाकर उसका हाथ चाटने लगे। दोनों की पूँछें खड़ी हो गईं। उसने उनके माथे सहलाए और बोली— खोले देती हूँ। चुपके से भाग जाओ, नहीं तो यहाँ लोग मार डालेंगे। आज घर में सलाह हो रही है कि इनकी नाकों में नाथ डाल दी जाए।

उसने गराँव खोल दिया, पर दोनों चुपचाप खड़े रहे।

मोती ने अपनी भाषा में पूछा— अब चलते क्यों नहीं?

हीरा ने कहा— चलें तो लेकिन कल इस अनाथ पर आफत आएगी। सब इसी पर संदेह करेंगे। सहसा बालिका चिल्लाई— दोनों फूफा वाले बैल भागे जा रहे हैं। ओ दादा! दादा! दोनों बैल भागे जा रहे हैं, जल्दी दौड़ो।

गया हड़बड़ाकर भीतर से निकला और बैलों को पकड़ने चला। वे दोनों भागे। गया ने पीछा किया और भी तेज़ हुए। गया ने शोर मचाया। फिर गाँव के कुछ आदमियों को भी साथ लेने के लिए लौटा। दोनों मित्रों को भागने का मौका मिल गया। सीधे दौड़ते चले गए। यहाँ तक कि मार्ग का ज्ञान न रहा। जिस परिचित मार्ग से आए थे, उसका यहाँ पता न था। नए-नए गाँव मिलने लगे। तब दोनों एक खेत के किनारे खड़े होकर सोचने लगे, अब क्या करना चाहिए।

हीरा ने कहा— मालूम होता है, राह भूल गए।

‘तुम भी बेतहाशा भागे। वहीं उसे मार गिराना था।’

‘उसे मार गिराते, तो दुनिया क्या कहती? वह अपना धर्म छोड़ दे, लेकिन हम अपना धर्म क्यों छोड़ें?’

दोनों भूख से व्याकुल हो रहे थे। खेत में मटर खड़ी थी। चरने लगे। रह-रहकर आहट ले लेते थे, कोई आता तो नहीं है।

जब पेट भर गया, दोनों ने आज़ादी का अनुभव किया, तो मस्त होकर उछलने-कूदने लगे। पहले दोनों ने डकार ली। फिर सींग मिलाए और एक-दूसरे को



ठेलने लगे। मोती ने हीरा को कई कदम पीछे हटा दिया, यहाँ तक कि वह खाई में गिर गया। तब उसे भी क्रोध आया। संभलकर उठा और फिर मोती से मिल गया। मोती ने देखा— खेल में झगड़ा हुआ चाहता है, तो किनारे हट गया।



2

अरे! यह क्या? कोई साँड डौंकता चला आ रहा है। हाँ, साँड ही है। वह सामने आ पहुँचा। दोनों मित्र बगलें झाँक रहे हैं। साँड पूरा हाथी है। उससे भिड़ना जान से हाथ धोना है लेकिन न भिड़ने पर भी जान बचती नहीं नज़र आती। इन्हीं की तरफ़ आ भी रहा है। कितनी भयंकर सूरत है!

मोती ने मूक-भाषा में कहा— बुरे फँसे। जान बचेगी? कोई उपाय सोचो।

हीरा ने चिंतित स्वर में कहा— अपने घमंड में भूला हुआ है। आरजू-विनती न सुनेगा।

‘भाग क्यों न चलें?’

‘भागना कायरता है।’

‘तो फिर यहीं मरो। बंदा तो नौ-दो-ग्यारह होता है।’

‘और जो दौड़ाए?’

‘तो फिर कोई उपाय सोचो जल्द!’

‘उपाय यही है कि उस पर दोनों जने एक साथ चोट करें? मैं आगे से रगेदता हूँ, तुम पीछे से रगेदो, दोहरी मार पड़ेगी, तो भाग खड़ा होगा। मेरी ओर झपटे, तुम बगल से उसके पेट में सींग घुसेड़ देना। जान जोखिम है पर दूसरा उपाय नहीं है।’

दोनों मित्र जान हथेलियों पर लेकर लपके। साँड को भी संगठित शत्रुओं से लड़ने का तजरबा न था। वह तो एक शत्रु से मल्ल युद्ध करने का आदी था। ज्यों ही हीरा पर झपटा, मोती ने पीछे से दौड़ाया। साँड उसकी तरफ़ मुड़ा तो हीरा ने रगेदा। साँड चाहता था कि एक-एक करके दोनों को गिरा ले पर ये दोनों भी उस्ताद थे। उसे वह अवसर न देते थे। एक बार साँड झल्लाकर हीरा का अंत कर देने के लिए चला कि मोती ने बगल से आकर पेट में सींग भोंक दिया। साँड क्रोध में आकर पीछे फिरा तो



हीरा ने दूसरे पहलू में सींग चुभा दिया। आखिर बेचारा ज़ख्मी होकर भागा और दोनों मित्रों ने दूर तक उसका पीछा किया। यहाँ तक कि साँड बेदम होकर गिर पड़ा। तब दोनों ने उसे छोड़ दिया।

दोनों मित्र विजय के नशे में झूमते चले जाते थे।

मोती ने अपनी सांकेतिक भाषा में कहा— मेरा जी तो चाहता था कि बच्चा को मार ही डालूँ।

हीरा ने तिरस्कार किया— गिरे हुए बैरी पर सींग न चलाना चाहिए।

‘यह सब ढोंग है। बैरी को ऐसा मारना चाहिए कि फिर न उठे।’

‘अब घर कैसे पहुँचेंगे, वह सोचो।’

‘पहले कुछ खा लें, तो सोचें।’

सामने मटर का खेत था ही। मोती उसमें घुस गया। हीरा मना करता रहा, पर उसने एक न सुनी। अभी दो ही चार ग्रास खाए थे कि दो आदमी लाठियाँ लिए दौड़ पड़े और दोनों मित्रों को घेर लिया। हीरा तो मेड़ पर था, निकल गया। मोती सींचे हुए खेत में था। उसके खुर कीचड़ में धँसने लगे। न भाग सका। पकड़ लिया। हीरा ने देखा, संगी संकट में हैं, तो लौट पड़ा। फँसेंगे तो दोनों फँसेंगे। रखवालों ने उसे भी पकड़ लिया।

प्रातःकाल दोनों मित्र कांजीहौस में बंद कर दिए गए।



3

दोनों मित्रों को जीवन में पहली बार ऐसा साबिका पड़ा कि सारा दिन बीत गया और खाने को एक तिनका भी न मिला। समझ ही में न आता था, यह कैसा स्वामी है। इससे तो गया फिर भी अच्छा था। यहाँ कई भैंसें थीं, कई बकरियाँ, कई घोड़े, कई गधे पर किसी के सामने चारा न था, सब ज़मीन पर मुरदों की तरह पड़े थे। कई तो इतने कमज़ोर हो गए थे कि खड़े भी न हो सकते थे। सारा दिन दोनों मित्र फाटक की ओर टकटकी लगाए ताकते रहे पर कोई चारा लेकर आता न दिखाई दिया। तब दोनों ने दीवार की नमकीन मिट्टी चाटनी शुरू की, पर इससे क्या तृप्ति होती?



रात को भी जब कुछ भोजन न मिला, तो हीरा के दिल में विद्रोह की ज्वाला दहक उठी। मोती से बोला— अब तो नहीं रहा जाता मोती!

मोती ने सिर लटकाए हुए जवाब दिया— मुझे तो मालूम होता है, प्राण निकल रहे हैं।
‘इतनी जल्द हिम्मत न हारो भाई! यहाँ से भागने का कोई उपाय निकालना चाहिए।’

‘आओ दीवार तोड़ डालें।’

‘मुझसे तो अब कुछ नहीं होगा।’

‘बस इसी बूते पर अकड़ते थे!’

‘सारी अकड़ निकल गई।’

बाड़े की दीवार कच्ची थी। हीरा मजबूत तो था ही, अपने नुकीले सींग दीवार में गड़ा दिए और ज़ोर मारा, तो मिट्टी का एक चिप्पड़ निकल आया। फिर तो उसका साहस बढ़ा। इसने दौड़-दौड़कर दीवार पर चोटें कीं और हर चोट में थोड़ी-थोड़ी मिट्टी गिराने लगा।

उसी समय कांजीहौस का चौकीदार लालटेन लेकर जानवरों की हाज़िरी लेने आ निकला। हीरा का उजड्डपन देखकर उसने उसे कई डंडे रसीद किए और मोटी-सी रस्सी से बाँध दिया।

मोती ने पड़े-पड़े कहा— आखिर मार खाई, क्या मिला?

‘अपने बूते-भर ज़ोर तो मार दिया।’

‘ऐसा ज़ोर मारना किस काम का कि और बंधन में पड़ गए।’

‘ज़ोर तो मारता ही जाऊँगा, चाहे कितने ही बंधन पड़ते जाएँ।’

‘जान से हाथ धोना पड़ेगा।’

‘कुछ परवाह नहीं। यों भी तो मरना ही है। सोचो, दीवार खुद जाती, तो कितनी जानें बच जातीं। इतने भाई यहाँ बंद हैं। किसी की देह में जान नहीं है। दो-चार दिन और यही हाल रहा, तो सब मर जाएँगे।’

‘हाँ, यह बात तो है। अच्छा, तो ला, फिर मैं भी ज़ोर लगाता हूँ।’

मोती ने भी दीवार में उसी जगह सींग मारा। थोड़ी-सी मिट्टी गिरी और फिर हिम्मत बढ़ी। फिर तो वह दीवार में सींग लगाकर इस तरह ज़ोर करने लगा, मानो



किसी प्रतिद्वंद्वी से लड़ रहा है। आखिर कोई दो घंटे की ज़ोर-आजमाई के बाद दीवार ऊपर से लगभग एक हाथ गिर गई। उसने दूनी शक्ति से दूसरा धक्का मारा, तो आधी दीवार गिर पड़ी।

दीवार का गिरना था कि अधमरे-से पड़े हुए सभी जानवर चेत उठे। तीनों घोड़ियाँ सरपट भाग निकलीं। फिर बकरियाँ निकलीं। इसके बाद भैंसों भी खिसक गईं; पर गधे अभी तक ज्यों-के-त्यों खड़े थे।

हीरा ने पूछा— तुम दोनों क्यों नहीं भाग जाते?

एक गधे ने कहा— जो कहीं फिर पकड़ लिए जाएँ!

‘तो क्या हरज है। अभी तो भागने का अवसर है।’

‘हमें तो डर लगता है, हम यहीं पड़े रहेंगे।’

आधी रात से ऊपर जा चुकी थी। दोनों गधे अभी तक खड़े सोच रहे थे कि भागें या न भागें, और मोती अपने मित्र की रस्सी तोड़ने में लगा हुआ था। जब वह हार गया, तो हीरा ने कहा— तुम जाओ, मुझे यहीं पड़ा रहने दो। शायद कहीं भेंट हो जाए।

मोती ने आँखों में आँसू लाकर कहा— तुम मुझे इतना स्वार्थी समझते हो, हीरा? हम और तुम इतने दिनों एक साथ रहे हैं। आज तुम विपत्ति में पड़ गए, तो मैं तुम्हें छोड़कर अलग हो जाऊँ।

हीरा ने कहा— बहुत मार पड़ेगी। लोग समझ जाएँगे, यह तुम्हारी शरारत है।

मोती गर्व से बोला— जिस अपराध के लिए तुम्हारे गले में बंधन पड़ा, उसके लिए अगर मुझ पर मार पड़े, तो क्या चिंता! इतना तो हो ही गया कि नौ-दस प्राणियों की जान बच गई। वे सब तो आशीर्वाद देंगे।

यह कहते हुए मोती ने दोनों गधों को सींगों से मार-मारकर बाड़े के बाहर निकाला और तब अपने बंधु के पास आकर सो रहा।

भोर होते ही मुंशी और चौकीदार तथा अन्य कर्मचारियों में कैसी खलबली मची, इसके लिखने की ज़रूरत नहीं। बस, इतना ही काफ़ी है कि मोती की खूब मरम्मत हुई और उसे भी मोटी रस्सी से बाँध दिया गया।



5

एक सप्ताह तक दोनों मित्र वहाँ बँधे पड़े रहे। किसी ने चारे का एक तृण भी न डाला। हाँ, एक बार पानी दिखा दिया जाता था। यही उनका आधार था। दोनों इतने दुर्बल हो गए थे कि उठा तक न जाता था, ठठरियाँ निकल आई थीं।

एक दिन बाड़े के सामने डुग्गी बजने लगी और दोपहर होते-होते वहाँ पचास-साठ आदमी जमा हो गए। तब दोनों मित्र निकाले गए और उनकी देखभाल होने लगी। लोग आ-आकर उनकी सूरत देखते और मन फीका करके चले जाते। ऐसे मृतक बैलों का कौन खरीदार होता?

सहसा एक दढ़ियल आदमी, जिसकी आँखें लाल थीं और मुद्रा अत्यंत कठोर, आया और दोनों मित्रों के कूल्हों में उँगली गोदकर मुंशी जी से बातें करने लगा। उसका चेहरा देखकर अंतर्ज्ञान से दोनों मित्रों के दिल काँप उठे। वह कौन है और उन्हें क्यों टटोल रहा है, इस विजय में उन्हें कोई संदेह न हुआ। दोनों ने एक-दूसरे को भीत नेत्रों से देखा और सिर झुका लिया।

हीरा ने कहा— गया के घर से नाहक भागे। अब जान न बचेगी।

मोती ने अश्रुद्धा के भाव से उत्तर दिया— कहते हैं, भगवान सबके ऊपर दया करते हैं। उन्हें हमारे ऊपर क्यों दया नहीं आती?

‘भगवान के लिए हमारा मरना-जीना दोनों बराबर है। चलो, अच्छा ही है, कुछ दिन उसके पास तो रहेंगे। एक बार भगवान ने उस लड़की के रूप में हमें बचाया था। क्या अब न बचाएँगे?’

‘यह आदमी छुरी चलाएगा। देख लेना।’

‘तो क्या चिंता है? माँस, खाल, सींग, हड्डी सब किसी-न-किसी काम आ जाएँगे।’

नीलाम हो जाने के बाद दोनों मित्र उस दढ़ियल के साथ चले। दोनों की बोटी-बोटी काँप रही थी। बेचारे पाँव तक न उठा सकते थे, पर भय के मारे गिरते-पड़ते भागे जाते थे क्योंकि वह ज़रा भी चाल धीमी हो जाने पर ज़ोर से डंडा जमा देता था।

राह में गाय-बैलों का एक रेवड़ हरे-हरे हार में चरता नजर आया। सभी जानवर प्रसन्न थे, चिकने, चपला। कोई उछलता था, कोई आनंद से बैठा पागुर करता था।



कितना सुखी जीवन था इनका; पर कितने स्वार्थी हैं सब किसी को चिंता नहीं कि उनके दो भाई अधिक के हाथ पड़े कैसे दुखी हैं।

सहसा दोनों को ऐसा मालूम हुआ कि यह परिचित राह है। हाँ, इसी रास्ते से गया उन्हें ले गया था। वही खेत, वही बाग, वही गाँव मिलने लगे। प्रतिक्षण उनकी चाल तेज होने लगी। सारी थकान, सारी दुर्बलता गायब हो गई। आह? यह लो! अपना ही हार आ गया। इसी कुएँ पर हम पुर चलाने आया करते थे, यही कुआँ है।

मोती ने कहा— हमारा घर नगीच आ गया।

हीरा बोला— भगवान की दया है।

‘मैं तो अब घर भागता हूँ।’

‘यह जाने देगा?’

‘इसे मैं मार गिराता हूँ।’

‘नहीं-नहीं, दौड़कर थान पर चलो। वहाँ से हम आगे न जाएँगे।’

दोनों उन्मत्त होकर बछड़ों की भाँति कुलेलें करते हुए घर की ओर दौड़े। वह हमारा थान है। दोनों दौड़कर अपने थान पर आए और खड़े हो गए। दड़ियल भी पीछे-पीछे दौड़ा चला आता था।

झूरी द्वार पर बैठा धूप खा रहा था। बैलों को देखते ही दौड़ा और उन्हें बारी-बारी से गले लगाने लगा। मित्रों की आँखों से आनंद के आँसू बहने लगे। एक झूरी का हाथ चाट रहा था।

दड़ियल ने जाकर बैलों की रस्सियाँ पकड़ लीं।

झूरी ने कहा— मेरे बैल हैं।

‘तुम्हारे बैल कैसे? मैं मवेशीखाने से नीलाम लिए आता हूँ।’

‘मैं तो समझा हूँ चुराए लिए आते हो! चुपके से चले जाओ। मेरे बैल हैं। मैं बेचूँगा तो बिकेंगे। किसी को मेरे बैल नीलाम करने का क्या अख्तियार है?’

‘जाकर थाने में रपट कर दूँगा।’

‘मेरे बैल हैं। इसका सबूत यह है कि मेरे द्वार पर खड़े हैं।’



दढ़ियल झल्लाकर बैलों को ज़बरदस्ती पकड़ ले जाने के लिए बढ़ा। उसी वक्त मोती ने सींग चलाया। दढ़ियल पीछे हटा। मोती ने पीछा किया। दढ़ियल भागा। मोती पीछे दौड़ा। गाँव के बाहर निकल जाने पर वह रुका; पर खड़ा दढ़ियल का रास्ता देख रहा था, दढ़ियल दूर खड़ा धमकियाँ दे रहा था, गालियाँ निकाल रहा था, पत्थर फेंक रहा था। और मोती विजयी शूर की भाँति उसका रास्ता रोके खड़ा था। गाँव के लोग यह तमाशा देखते थे और हँसते थे।

जब दढ़ियल हारकर चला गया, तो मोती अकड़ता हुआ लौटा।

हीरा ने कहा, मैं डर रहा था कि कहीं तुम गुस्से में आकर मार न बैठो।

‘अगर वह मुझे पकड़ता, तो मैं बे-मारे न छोड़ता।’

‘अब न आएगा।’

‘आएगा तो दूर ही से खबर लूँगा। देखूँ, कैसे ले जाता है।’

‘जो गोली मरवा दे?’

‘मर जाऊँगा, पर उसके काम तो न आऊँगा।’

‘हमारी जान को कोई जान ही नहीं समझता।’

‘इसीलिए कि हम इतने सीधे हैं।’

ज़रा देर में नाँदों में खली, भूसा, चोकर और दाना भर दिया गया और दोनों मित्र खाने लगे। झूरी खड़ा दोनों को सहला रहा था और बीसों लड़के तमाशा देख रहे थे।

सारे गाँव में उछाह-सा मालूम होता था।

उसी समय मालकिन ने आकर दोनों के माथे चूम लिए।

संवाद

1. कहानी में आई उन घटनाओं का वर्णन करिए जिनसे संकेत मिलता है कि हीरा और मोती में प्रतिकूल परिस्थितियों से जूझने की अदम्य शक्ति है।
2. “दोनों की आँखों में मुहब्बत की नाराज़गी झलक रही थी।” कहानी के इस कथन के आधार पर झूरी और उसके बैलों के बीच आपसी संबंधों के बारे में अपने विचार लिखिए।





दुर्मुख खरगोश

महादेवी वर्मा

महादेवी वर्मा के रेखाचित्र हमेशा आकर्षित करते हैं। इस रेखाचित्र में 'दुर्मुख' खरगोश के क्रोधी स्वभाव का रोमांचक चित्रण है। मनुष्य की भाँति पशुओं में दिखने वाली स्वभावगत विविधता हमें कई बार चकित करती है। इस रेखाचित्र में खरगोश जैसे कोमल प्राणी का हिंसक व्यवहार आश्चर्य में डालता है।

किसी को विश्वास न होगा कि बोल-चाल के 'लड़ाकू' विशेषण से लेकर शुद्ध संस्कृत की 'दुर्मुख', 'दुर्वासा' जैसी संज्ञाओं तक का भार संभालने वाला एक कोमल प्राण खरगोश था। परंतु यथार्थ कभी-कभी कल्पना की सीमा नाप लेता है।



किसी सजातीय-विजातीय जीव से मेल न रखने के कारण माली ने उस खरगोश का लड़ाकू नाम रख दिया, मेरी शिष्याओं ने उसके कटखन्ने स्वभाव के कारण उसे दुर्मुख पुकारना आरंभ किया और मैंने, उसकी अकारण क्रोधी प्रकृति के कारण उसे दुर्वासा की संज्ञा से विभूषित किया।

लड़ाकू नाम के लिए तो किसी से क्षमा माँगने की आवश्यकता नहीं जान पड़ती, परंतु दुर्मुख और दुर्वासा जैसे पौराणिक नामों का ऐसा दुरुपयोग अवश्य ही चिंतनीय कहा जाएगा!

दुर्मुख से तो मैं स्वयं भी रुष्ट हूँ। यह मर्यादा पुरुषोत्तम राम का गुप्तचर था और रजक द्वारा सीता संबंधी अपवाद की बात राम से कहकर उसने सीता-निर्वासन की भूमिका घटित की थी। राजा अपने शत्रु राजाओं के क्रियाकलाप की जानकारी के लिए गुप्तचर रखता है, प्रजा के प्रत्येक घर में दंपत्ति की रहस्य वार्ता जानने के लिए नहीं और यह तो सर्वविदित है कि पति-पत्नी क्रोध में एक-दूसरे से न जाने क्या-क्या कह डालते हैं। फिर क्रोध का आवेश समाप्त हो जाने पर “अजी जाने दो, वह तो क्रोध में बिना सोचे-समझे मुँह से निकल गया था”, कहकर परस्पर क्षमा माँग लेते हैं। प्रत्येक गृहस्वामी अपने गृह का राजा और उसकी पत्नी रानी है। कोई गुप्तचर, चाहे वह देश के राजा का ही क्यों न हो, यदि उनकी निजी वार्ता को सार्वजनिक घटना के रूप में प्रचारित कर दे, तो उसे गुप्तचर का अनाधिकार, दुष्टाचरण ही कहा जाएगा।

इससे स्पष्ट है कि पैसे दाँतों के दुरुपयोग में पटु, खरगोश का दुर्मुख नाम रखकर भी हमने राम के दुष्ट गुप्तचर का कोई अपमान नहीं किया। परंतु महर्षि दुर्वासा के नाम का ऐसा धृष्टतापूर्ण उपयोग करने के लिए मुझे उनकी रुद्र स्मृति से बार-बार क्षमा याचना करनी पड़ी। वे महर्षि निर्वाण को प्राप्त होकर निर्विकार ब्रह्म में क्रोध की तरंगें उठा रहे हैं, या किसी अन्य लोकवासियों को शाप से कम्पायमान कर रहे हैं, यह जान लेने का कोई साधन नहीं है। संभवतया अंतर्दृष्टि से यह जान लेने के उपरांत कि उस शशक की क्रोधी प्रकृति को व्यक्त करने का सामर्थ्य केवल उन्हीं के नाम में निहित है, उन्होंने मुझे क्षमा कर दिया है, अन्यथा मेरी धृष्टता अब तक शापमुक्त न रहती।

उस शशक दुर्वासा की प्राप्ति एक दुर्योग ही कही जाएगी।



पड़ोस के एक सज्जन दंपत्ति ने खरगोश का एक जोड़ा पाल रखा था, जिसने उनके आँगन में मिट्टी के भीतर सुरंग जैसा अपना निवास बना लिया था। संध्या होते ही गृहिणी उस सुरंग के द्वार पर डलिया ढककर उस पर सिल रख देती थी। एक रात वह सुरंग का द्वार मूंदना भूल गई और निरंतर ताक-झाँक में रहनेवाली मार्जरी ने बिल में घुसकर दोनों खरगोशों और उनके तीन बच्चों को क्षत-विक्षत कर डाला, केवल एक शशक-शिशु माँ के पैरों के बीच छिपा रहने के कारण जीवित बच गया।

इतने छोटे जीव को पालने की जो समस्या थी, उसका समाधान हमारे माली ने उसे मेरे घर लाकर कर दिया। खरगोश स्तनपायी जीव है, अतः बच्चे को रुई की बत्ती से दूध पिला-पिलाकर बड़ा करने का यत्न किया जाने लगा। रहता वह मेरे कमरे में ही था। उसके बैठने और सोने के लिए एक मचिया पर रुईदार गद्दी बिछा दी गई थी, पर वह प्रायः मेरे तकिये के पास ही सो जाता था। ज्यों-ज्यों वह बड़ा होने लगा, त्यों-त्यों उसका क्रोधी स्वभाव हमारे विस्मय और चिंता का कारण बनने लगा।

वस्तुतः खरगोश बहुत निरीह जीव है। दाँत होने पर भी वह किसी को काटता नहीं, पंजे होने पर भी वह किसी को नोंचता-खरोंचता नहीं। भय उसका स्थायी भाव है। नवपालित शशक हमारी धारणायों के सर्वथा विपरीत था। दूध-भात देर से मिलने पर वह पंजों से कटोरी उलट देता, देनेवाले के हाथ में या हाथ पहुँच से बाहर होने पर पैर में अपने नन्हें पर पैने दाँत चुभा देता और कमरे भर में दौड़-दौड़कर जो कुछ उसकी पहुँच में होता, उसे फेंकता-उलटता हुआ घूमता। उसके भय से छिपकली क्या अन्य कीट-पतंग तक मेरे कमरे से दूर रहते थे।

ऐसे वह अन्य खरगोशों के समान प्रियदर्शन था, परंतु एक विशेषता के साथ। कुछ बड़े-बड़े सघन कोमल और चमकीले फर के रोमों से उसका शरीर आच्छादित था, पूँछ छोटी और सुंदर और पंजे स्वच्छ थे, जिनसे वह हर समय अपना मुख साफ़ करता रहता था। कान विलायती खरगोशों के कानों के समान कुछ कम लंबे थे, परंतु उनकी सुडौलता और सीधे खड़े रहने में विशेष मोहक सौंदर्य था। विशेषता यह थी कि एक कान काला था और एक सफ़ेदा काले कान के ओर की आँख काली थी और सफ़ेद कान के ओर की लाल। सामान्यतः सफ़ेद खरगोशों की आँखें लाल और काले या चितकबरो की काली होती हैं। परंतु इस खरगोश की दोनों आँखों ने अपने दो भिन्न रंगों से उस नियम का अपवाद उपस्थित कर दिया था। कभी-कभी लगता,



मानो दो भिन्न खरगोशों का आधा-आधा शरीर जोड़ कर एक बना दिया गया हो और आँखों में एक ओर नीलम और दूसरी ओर रूबी का चमकीला मनका जड़ दिया हो। स्वजाति की सतर्कता और आतंकित मुद्रा का उसमें सर्वथा अभाव था।

मेरे कमरे में स्प्रिंगदार जाली के दरवाज़े लगे हैं और खिड़कियों में भी जाली है। अचानक किसी कुत्ते-बिल्ली के भीतर आ जाने की संभावना नहीं रहती थी, परंतु जाली के बाहर तो वे प्रायः आकर मेरी प्रतीक्षा में खड़े हो ही जाते थे। खरगोश न भागता, न कहीं छिपने का प्रयत्न करता, वरन जाली के पास आकर क्रोधित मुद्रा में अपनी दोनों काली लाल आँखों से उन्हें घूरता रहता। बिल्ली यदि जाली के पार खिड़की पर आकर बैठ जाती, तो वह अपने पिछले दोनों पैरों पर खड़े होकर उसे देखता और मुख से विचित्र क्रोधभरा स्वर निकालता। मेरे कमरे में दुर्मुख के रहने से शेष पशु-पक्षियों को निर्वासन ही मिल गया था, इसी से जब वह कुछ बड़ा, हृष्ट-पुष्ट और चिकना हो गया, तब मैंने उसे अपने पशु-पक्षियों के रहने के लिए बने जाली के घर में पहुँचाना उचित समझा। वहाँ आधा फ़र्श सीमेंट का है और आधा कच्चा मिट्टी का क्योंकि खरगोश जैसे जीव मिट्टी खोदकर अपने लिए निवास बनाकर ही प्रसन्न रहते हैं। पिंजड़े या पक्के फ़र्शवाले घर में उनके जीवन का स्वाभाविक विकास और उल्लास रुक जाता है।

दुर्मुख ने पहले तो मिट्टी खोदकर अपने रहने के लिए सुरंग जैसा घर बनाया और उस निर्माण कार्य से अवकाश मिलते ही जालीघर के अन्य निवासियों से 'युद्धं देहि' कहना आरंभ किया। उसके झपटने और काटने के कारण कबूतर, मोर आदि का दाना चुगने के लिए नीचे उतरना कठिन हो गया। वे तब तक अपने अड्डों और झूलों पर बैठे रहते, जब तक दुर्मुख अपने भोजन से तृप्त होकर सुरंग-घर में विश्राम के लिए न चला जाता। कभी-कभी सुरंग में भी उसे अपने प्रतिद्वंद्वियों के नीचे उतरने की आहट मिल जाती। तब वह अचानक उन पर आक्रमण कर किसी की गर्दन और किसी के पैरों में अपने पैने दाँत गड़ा देता और वे आर्त्त स्वर से कोलाहल करते हुए ऊपर उड़ जाते।

अंत में यह सोचकर कि दुर्मुख के क्रोधी स्वभाव के कारण संभवतः उसका स्वजातिशून्य अकेलापन है, मैं नखासकोने के बड़े मियां से एक शशक वधू खरीद लाई। वह हिम-खण्ड जैसी चमकीली, शुभ्र और लाल विद्रुम जैसी सुंदर आँखों वाली



थी, इसी से उसे हम हिमानी कहने लगे। पर मेरी यह धारणा कि दुर्मुख उसके साथ शिष्ट खरगोश के समान व्यवहार करेगा, भ्रांत सिद्ध हुई। अपनी काली-लाल आँखों में मानो, धूम और ज्वाला मिलाकर आग्नेय दृष्टि से उसने नवागता को देखा और फिर आक्रमण कर दिया। बड़ी कठिनाई से हम उस बेचारी की रक्षा कर सके। अपने बिल में तो दुर्मुख ने उसे घुसने ही नहीं दिया और जब एक बार उसकी अनुपस्थिति का लाभ उठाकर हिमानी ने उसके सुरंग-भवन में प्रवेश का साहस किया, तब सुरंग के स्वामी ने अचानक लौटकर उसे कानों से खींचते हुए बाहर ही नहीं निकाल दिया, उसके सुंदर, कोमल और हिम शुभ्र कानों को कुतरकर लहू-लुहान भी कर डाला। निरुपाय हिमानी ने जब दूसरा बिल खोदकर और उसमें कोमल हरी दूब बिछाकर अपना विश्राम कक्ष तैयार किया, तब दुर्मुख उस पर भी अपना अधिकार जमाने के लिए लड़ने लगा। फिर शीत के कुछ मास बीत जाने पर और वसंती ग्रीष्म के लंबे दिन लौट आने पर दुर्मुख की कलह-प्रियता में कुछ थोड़ा-सा अंतर दिखाई पड़ा।

एक दिन जब हिमानी अपने बिल से छह शावकों की सेना लेकर निकली, तो जालीघर में ही नहीं, मेरे घर में भी उल्लासोत्सव की लहर बह गई, पर इस नवीन सृष्टि के आने के साथ ही दुर्मुख की अकारण क्रोधी प्रकृति भी अपने संपूर्ण ध्वंसात्मक आवेश के साथ लौट आई।

वह किसी बच्चे का पाँव चबा डालता, किसी का कान कुतर डालता और किसी की पीठ में घाव कर देता। कदम्ब के फूल से फूले वे कोमल बच्चे रक्त से रंग-बिरंगे हो उठते। हिमानी भी अपनी संतान की रक्षा के प्रयत्न में नित्य ही घायल होने लगी। लोरेक्सेन मरहम, नेवासल्फ पाउडर, रुई आदि की गंध से, अशोक वृक्ष की छाया में मालती लता से छाया चिड़ियाघर भी अस्पताल का स्मरण दिलाने लगा।

फिर एक दिन क्रोध में दुर्मुख ने दो शशक-शावकों की कोमल गर्दन अपने तीखे दाँतों से इतनी क्षत-विक्षत कर डाली कि वे बचाए न जा सके। स्थिति इतनी चिंतनीय हो जाने पर मैंने उसे अलग रखने का निश्चय किया। बड़े जालीघर के पास एक छोटा जालीघर बनाकर उसमें दुर्मुख को स्थानांतरित कर दिया गया, जहाँ से वह देख सबको सकता था, परंतु उन पर आक्रमण करने में असमर्थ था। अपने निर्वासन में वह कुछ दिनों तक निष्फल क्रोध से छटपटाता रहा, फिर धरती खोदकर बिल बनाने में व्यस्त हो गया। बड़े जालीघर में जाने के लिए उसने ऐसा अव्यर्थ उपाय खोज निकाला था, जिसकी हम कल्पना भी नहीं कर सके थे। धरती के नीचे-नीचे उसने



एक इतनी लंबी सुरंग खोद डाली, जो बड़े जालीघर के भीतर पहुँच गई और इसी से वह बड़े जालीघर में बिना रोकटोक आने लगा। माली ने बड़े जालीघर में खुलनेवाली सुरंग के द्वार को पत्थर से बंद तो कर दिया, परंतु इससे दुर्मुख का आक्रमण रोकना कठिन था। वह नए-नए द्वार बना लेता और जालीघर को जब तब रणक्षेत्र में परिवर्तित करता रहता। उसके बच्चे बड़े हो गए, फिर उनके भी बच्चे होने लगे, पर उनमें से न कोई दुर्मुख से लड़कर बल में जीत सका और न अपत्य-स्नेह से उसका हृदय जीत सका। यदि मृत्यु उसे न जीत लेती, तो यह क्रम निरंतर चलता रहता।

फिर एक दिन जाकर देखा कि दुर्मुख निश्चेष्ट और ठंडा पड़ा है और एक सँपोले की पूँछ की ओर का भाग उसके दाँतों में दबा हुआ है। सँपोले के मुख की ओर का भाग उसके पंजों के नीचे था।

प्रायः खरगोश की गंध से साँप आ जाते हैं; क्योंकि वह उसके प्रिय खाद्यों में से एक है। संभवतः साँप का बच्चा गंध से जाली के भीतर घुस आया हो, क्योंकि बड़े साँप का तो उस जाली में प्रवेश कठिन था। दुर्मुख अपने स्वभाव के कारण ही उस पर झपट पड़ा होगा। वह जालीघर में बने चबूतरे पर भी चढ़ सकता था। जिस पर साँप न चढ़ पाता और सुरंग से बड़े जाली घर में भी जा सकता था, जहाँ मोरों के कारण साँप न प्रवेश कर पाता, परंतु उसकी चिर लड़ाकू प्रकृति ने बचाव का कोई साधन स्वीकार नहीं किया। क्रोधी प्रकृति में भी पार्थिव रूप से मारक विष नहीं रहता, इसी से बेचारा दुर्मुख सँपोले का भी दंशन-विष नहीं सह सका, परंतु मृत्यु से पहले उसने शत्रु के दो खंड करके अपना प्रतिशोध तो ले ही लिया।

हमने बड़े जालीघर में उसकी समाधि बना दी है। मेरे सौ के लगभग खरगोश दुर्मुख की ही प्रजा हैं, इसे कम लोग जानते हैं। उसकी संतति तो अपने पूर्वज का इतिहास जानने की शक्ति नहीं रखती, परंतु मेरे घर में उसकी विशेषताओं की चर्चा प्रायः हो जाती है।

मेरे माली का आज भी निश्चित मत है कि उस खरगोश पर पहलवान जी की छाया थी, नहीं तो भला कोई खरगोश साँप से लड़कर उसके टुकड़े कर सकता है। पहलवान जी की समाधि कहीं पास ही है और उनकी शक्ति की इतनी ख्याति है कि दूर-दूर से ग्रामवासी मनौतियाँ मनाने आते हैं।



पर मुझे आज भी यह वह छोटा, मैगनोलिया के फूल-सा कोमल श्वेत शशक-शावक स्मरण हो आता है, जिसके जीवन के आरंभ में ही उस पर दुर्योग से मार्जारी की निष्ठुर छाया आ पड़ी थी। यदि वह अन्य शावकों के समान खेलता-खाता माँ की स्नेह-छाया में बड़ा होता, तो पता नहीं कैसा होता?

संवाद

1. सामान्यतया खरगोश कोमल-शांत स्वभाव का जीव होता है, इसके विपरीत दुर्मुख की आक्रामकता या आक्रामक स्वभाव के क्या कारण हैं, विचार कर लिखिए?
2. खरगोश के क्रोधी स्वभाव के कारण उसे दुर्मुख नाम दिया गया। आपने भी अपने पालतू या आस-पास के पशु-पक्षियों के नाम उनके स्वभाव के आधार पर रखे होंगे। उनके बारे में लिखिए।





गुलेल का खेल

भीष्म साहनी

भीष्म साहनी की कहानी 'गुलेल का खेल' पक्षियों के प्रति बोधराज की बदलती संवेदना की कहानी है। कहानी के आरंभ में जो बोधराज पक्षियों को मारने और उनके घोंसले तोड़ने में ज़रा भी नहीं हिचकता है, कहानी के अंत में वही, मैना के बच्चों को चील से बचाने में जी-जान लगा देता है। कहानी यह बताती है कि संकट में घिरे प्राणी को देखकर मनुष्य की प्रवृत्ति और व्यवहार बदल जाता है।

छठी कक्षा में पढ़ते समय मेरे तरह-तरह के सहपाठी थे। हरबंस नाम का लड़का हुआ करता था जिसके सब काम अनूठे हुआ करते थे। उसे जब सवाल समझ में नहीं आता तो स्याही की दवात उठाकर पी जाता। उसे किसी ने कह रखा था कि काली स्याही पीने से अक्ल तेज होती है।



मास्टरजी गुस्सा होकर उस पर हाथ उठाते तो बेहद ऊँची आवाज़ में चिल्लाने लगता, “मार डाला! मास्टरजी ने मार डाला! इतनी ज़ोर से चिल्लाता कि आसपास की जमातों की उस्ताद बाहर निकल आते कि क्या हुआ है। मास्टरजी ठिठककर हाथ नीचा कर लेते। यदि वह उसे पीटने लगते तो हरबंस सीधा उनसे चिपट जाता और ऊँची-ऊँची आवाज़ में कहने लगता, “अबकी माफ़ कर दो जी! आप बादशाह हो जी! आप अकबर महान हो जी! आप सम्राट हो जी! आप माई-बाप हो जी, मेरे दादा हो जी, परदादा हो जी!”

क्लास में लड़के हँसने लगते और मास्टरजी झोंपकर उसे पीटना छोड़ देते। ऐसा था हरबंस आए दिन बाग में से मेंढक पकड़ लाता और कहता कि हाथ पर मेंढक की चर्बी लगा लें तो मास्टरजी के बेंत का कोई असर नहीं होता; हाथ को पता ही नहीं लगता कि बेंत पड़ा है।

एक दूसरा सहपाठी था— बोधराज। इससे हमसब डरते थे। वह चीउंटी काटता तो लगता जैसे साँप ने डस लिया है। बड़ा ज़ालिम लड़का था। गली की नाली पर जब बरें आकर बैठते तो नंगे हाथ से वह बर्रा पकड़कर उसका डंक निकाल लेता, और फिर बरें की टाँग में धागा बाँधकर उसे पतंग की तरह उड़ाने की कोशिश करता। बाग में जाता तो फूल पर बैठी तितली को लपककर पकड़ लेता और दूसरे क्षण उँगलियों के बीच मसल डालता। अगर मसलता नहीं तो फड़फड़ाती तितली में पिन खोसकर उसे अपनी कापी में टाँक लेता।

उसके बारे में कहा जाता था कि अगर बोधराज को बिच्छू काट जाए तो स्वयं बिच्छू मर जाता है; बोधराज का खून इतना कड़वा है कि उसे कुछ भी महसूस नहीं होता। सारा वक्त उसके हाथ में गुलेल रहता और उसका निशाना अचूक था। पक्षियों के घोंसलों पर तो उसकी विशेष कृपा रहती थी। पेड़ के नीचे खड़े होकर वह ऐसा निशाना बाँधता कि दूसरे ही क्षण पक्षियों की चीं-चीं सुनाई देती और घोंसले में से तिनके और थिंगलियाँ टूट-टूटकर हवा में छितरने लगते या वह झट से पेड़ पर चढ़ जाता और घोंसले में से अंडे निकाल लाता। जब तक वह घोंसले को तोड़-फोड़ नहीं डाले उसे चैन नहीं मिलता था।

उसे कभी भी कोई ऐसा खेल नहीं सूझता था जिसमें किसी को कष्ट नहीं पहुँचाया गया हो। बोधराज की माँ भी उसे राक्षस कहकर पुकारती थी। बोधराज जब में तरह



तरह की चीजें उठाए घूमता, कभी मैना का बच्चा, या तरह तरह के अंडे, या काँटेदार झाऊ चूहा। उससे सभी छात्र डरते थे। किसी के साथ झगड़ा हो जाता तो बोधराज सीधा उसकी छाती में टक्कर मारता या उसका हाथ काट खाता। स्कूल के बाद हम लोग तो अपने अपने घरों को चले जाते मगर बोधराज न जाने कहाँ घूमता रहता।

कभी-कभी वह हमें तरह-तरह के किस्से सुनाता। एक दिन कहने लगा— “हमारे घर में एक ‘गो’ रहती है। जानते हो ‘गो’ क्या होती है?”

“नहीं तो, क्या होती है ‘गो’?”

“गो साँप जैसा एक जानवर होता है। बालिशत-भर लंबा, मगर उसके पैर होते हैं। साँप के पैर नहीं होते।”

हम सिहर उठे।

“हमारे घर में सीढ़ियों के नीचे ‘गो’ रहती है।” बोला, “जिस चीज़ को वह अपने पंजों से पकड़ ले, वह उसे कभी भी नहीं छोड़ती। कुछ भी हो जाए, नहीं छोड़ती।”

हम फिर सिहर उठे।

“चोर अपने पास ‘गो’ को रखते हैं। वे दीवार फाँदने के लिए ‘गो’ का इस्तेमाल करते हैं। वे ‘गो’ की एक टाँग में रस्सी बाँध देते हैं। फिर जिस दीवार को फाँदना हो, रस्सी को झुलाकर दीवार के ऊपर की ओर फेंकते हैं। दीवार के साथ लगते ही ‘गो’ अपने पंजों से दीवार को पकड़ लेती है। उसका पंजा इतना मज़बूत होता है कि फिर रस्सी को दस आदमी भी खींचें तो ‘गो’ दीवार को नहीं छोड़ेगी। चोर उसी रस्सी के सहारे दीवार फाँद जाते हैं।”

“फिर दीवार को तुम्हारी ‘गो’ छोड़ती कैसे है?” मैंने पूछा।

“ऊपर पहुँचकर चोर उसे थोड़ा-सा दूध पिलाते हैं। दूध पीते ही ‘गो’ के पंजे ढीले पड़ जाते हैं।”

इसी तरह के किस्से बोधराज हमें सुनाता।

उन्हीं दिनों मेरे पिताजी की तरक्की हुई और हम लोग एक बड़े घर में जाकर रहने लगे। घर नहीं था, बंगला था, मगर पुराने ढंग का, और शहर के बाहर। फ़र्श ईंटों के, छतें ऊँची-ऊँची और ढालवाँ, कमरे बड़े-बड़े, लेकिन दीवारों में लगता जैसे



गारा भरा हुआ है। बाहर खुली ज़मीन थी और पेड़-पौधे थे। घर तो अच्छा था मगर बड़ा खाली-खाली सा था और शहर से दूर होने के कारण मेरा दोस्त यार भी यहाँ पर कोई नहीं था।

तभी वहाँ बोधराज आने लगा। शायद उसे मालूम हो गया था कि वहाँ शिकार अच्छा मिलेगा, क्योंकि उस पुराने घर में और घर के आँगन में अनेक पक्षियों के घोंसले थे, आस-पास बंदर घूमते थे, और घर के बाहर झाड़ियों में नेवलों के दो-एक बिल थे। घर के पिछले हिस्से में एक बड़ा कमरा था। जिसमें माँ ने फालतू असबाब भरकर गोदाम-सा बना दिया था। यहाँ पर कबूतरों का डेरा था। दिनभर वहाँ पर गुटरगूँ-गुटरगूँ चलती रहती। वहीं पर टूटे रोशनदान के पास एक मैना का भी घोंसला था। कमरे के फ़र्श पर पंख और टूटे अंडे और घोंसलों के तिनके बिखरे रहते।

बोधराज आता तो मैं उसके साथ घूमने निकल जाता। एक बार वह झाऊ चूहा उठा लाया, जिसका काला थूथना और कंटीले बाल देखते ही मैं डर गया था। माँ को मेरा बोधराज के साथ घूमना अच्छा नहीं लगता था, मगर वह जानती थी कि मैं अकेला घर में पड़ा-पड़ा क्या करूँगा। माँ भी उसे राक्षस कहती थी और उसे बहुत समझाती थी कि गरीब जानवरों को तंग नहीं किया करो।

एक दिन माँ मुझे बोली, “अगर तुम्हारे दोस्त को घोंसले तोड़ने में ही मज़ा आता है तो उससे कहो कि हमारे गोदाम में से घोंसले साफ़ कर दे। चिड़ियों ने कमरे को बहुत गंदा कर रखा है।”

“मगर माँ, तुम खुद ही तो कहती थी— जो घोंसले तोड़ता है उसे पाप चढ़ता है।”

“मैं यह थोड़े ही कहती हूँ कि पक्षियों को मारे। यह तो पक्षियों पर गुलेल चलाता है, उन्हें मारता है। घोंसला हटाना तो दूसरी बात है।”

चुनांचे जब बोधराज घर पर आया तो मैं घर का चक्कर लगाकर उसे पिछवाड़े की ओर गोदाम में ले गया। गोदाम पर ताला चढ़ा था। हम ताला खोलकर अंदर गए। शाम हो रही थी और गोदाम के अंदर झुटपुटा-सा छाया था। कमरे में पहुँचे तो मुझे लगा जैसे हम किसी जानवर की माँद में पहुँच गए हों। बला की बू थी, और फ़र्श पर बिखरे हुए पंख और पक्षियों की बीटा।



सच पूछो तो मैं तो डर गया। मैंने सोचा, यहाँ भी बोधराज अपना धिनौना शिकार खेलेगा, यह घोंसलों को तोड़-तोड़कर गिराएगा, पक्षियों के पर नोचेगा, उनके अंडे तोड़ेगा, ऐसी सभी बातें करेगा, जिनसे मेरा दिल दहलता था। न जाने माँ ने क्यों कह दिया था कि इसे गोदाम में ले जाओ और इससे कहो कि गोदाम में से घोंसले साफ़ कर दो। मुझे तो इसके साथ खेलने को भी मना करती थी और अब कह दिया कि घोंसले तोड़ो।

मैंने बोधराज की ओर मुड़कर देखा तो उसने गुलेल संभाल ली थी, और बड़े चाव से छत के नीचे मैना के घोंसले की ओर देख रहा था। गोदाम की ढालवाँ छतें तिकोन-सा बनाती थीं। दो पल्ले ढालवाँ उतरते थे और नीचे एक लंबा शहतीर कमरे के आर-पार डाला गया था। इसी शहतीर पर, टूटे हुए रोशनदान के पास ही, एक बड़ा-सा घोंसला था, जिसमें से उभरे हुए तिनके, रूई के फाहे और लटकती थिंगलियाँ हमें नज़र आ रही थीं। यह मैना का घोंसला था। कबूतर अलग से, दूसरी ओर शहतीर पर गुटरगूँ-गुटरगूँ कर रहे थे और सारा वक्त शहतीर के ऊपर चहलकदमी कर रहे थे।

“घोंसले में मैना के बच्चे हैं,” बोधराज ने कहा और अपनी गुलेल साध ली।

तभी मुझे घोंसले में से दो छोटे-छोटे बच्चों की पीली-पीली नन्ही चोंचें झाँकती नज़र आईं।

“देखा?” बोधराज कह रहा था, “यह विलायती मैना है, इधर घोंसला नहीं बनाती। इनके माँ-बाप ज़रूर अपने काफिले से बिछड़ गए होंगे और यहाँ आकर घोंसला बना लिया होगा।”

“इनके माँ-बाप कहाँ हैं?” मैंने पूछा।

“चुग्गा लेने गए हैं। अभी आते ही होंगे,” कहते हुए बोधराज ने गुलेल उठाई।

मैं उसे रोकना चाहता था कि घोंसले पर गुलेल नहीं चलाए, पर तभी बोधराज की गुलेल से फर्रर्र की आवाज़ निकली और इसके बाद ज़ोर की टन की आवाज़ आई। गुलेल का कंकड़ घोंसले से न लगकर सीधा छत पर जा लगा था जहाँ टीन की चादरें लगी थीं।

दोनों चोंच घोंसले के बीच गायब हो गईं। सकता-सा छा गया। लगता था मैना के बच्चे सहमकर चुप हो गए हैं।

तभी बोधराज ने गुलेल से एक और वार किया। अबकी कंकड़ शहतीर से लगा। बोधराज अपने अचूक निशाने पर बड़ा अकड़ा करता था। दो निशाने



चूक जाने पर वह बौखला उठा। अबकी बार वह थोड़ी देर तक चुपचाप खड़ा रहा। जिस वक्त मैना के बच्चों ने अपनी चोंचें फिर से उठाईं और घोंसले के बाहर झाँककर देखने लगे, उसी समय बोधराज ने तीसरा वार किया। अब की कंकड़ घोंसले के किनारे पर लगा। तीन-चार तिनके और रूई के गोले उड़े और छितरा-छितराकर फ़र्श की ओर उतरने लगे। लेकिन घोंसला गिरा नहीं।

बोधराज ने फिर से गुलेल तान ली थी। तभी कमरे में एक भयानक-सा साया डोल गया। हमने नज़र उठाकर देखा। रोशनदान में से आनेवाली रोशनी सहसा ढक गई थी। रोशनदान के सींखचे पर एक बड़ी-सी चील पर फैलाए बैठी थी। हम दोनों ठिठककर उसकी ओर देखने लगे। रोशनदान में बैठी चील भयावह-सी लग रही थी।

“यह चील का घोंसला होगा। चील अपने घोंसले में लौटी है।” मैंने कहा।

“नहीं, चील का घोंसला यहाँ कैसे हो सकता है? चील अपना घोंसला पेड़ों पर बनाती है। यह मैना का घोंसला है।”

उसी वक्त घोंसले में चीं-चीं की ऊँची आवाज़ आने लगी। घोंसले में बैठे मैना के बच्चे पर फड़फड़ाने और चिल्लाने लगे।

हम दोनों निश्चेष्ट-से खड़े हो गए, यह देखने के लिए कि चील अब क्या करेगी? हम दोनों टकटकी बाँधे चील की ओर देखे जा रहे थे।

चील रोशनदान में से अंदर आ गई। उसने अपने पर समेट लिए थे और रोशनदान पर से उतरकर गोदाम के आर-पार लगे शहतीर पर उतर आई थी। वह अपना छोटा-सा सिर हिलाती कभी दाएँ, कभी बाएँ देखने लगती। मैं चुप था, बोधराज भी चुप था, न जाने वह क्या सोच रहा था।

घोंसले में से बराबर चीं-चीं की आवाज़ आ रही थी, बल्कि पहले से कहीं ज़्यादा बढ़ गई थी। मैना के बच्चे बुरी तरह डर गए जान पड़ते थे।

“यह यहाँ रोज़ आती होगी।” बोधराज बोला।

अब मेरी समझ में आया कि क्यों फ़र्श पर जगह-जगह पंख और माँस के लोथड़े बिखरे पड़े रहते हैं। ज़रूर आए दिन चील घोंसले पर झपट्टा मारती होगी। माँस के टुकड़े और खून सने पर इसी की चोंच से गिरते होंगे।

बोधराज अभी भी टकटकी बाँधे चील की ओर देख रहा था।



अब चील धीरे-धीरे शहतीर पर चलती हुई घोंसले की ओर बढ़ने लगी थी और घोंसले में बैठे मैना के बच्चे पर फड़फड़ाने और चीखने लगे थे। जब से चील रोशनदान पर आकर बैठी थी, मैना के बच्चे चीखे जा रहे थे। बोधराज अभी भी मूर्तिवत खड़ा चील की ओर ताके जा रहा था।

मैं घबरा उठा। मैं मन में बार-बार कहता, क्या फर्क पड़ता है अगर चील मैना के बच्चों को मार डालती है या बोधराज अपनी गुलेल से उन्हें मार डालता है? अगर चील नहीं आती तो इस वक्त तक बोधराज ने मैना का घोंसला नोच भी डाला होता।

तभी बोधराज ने गुलेल उठाई और सीधा निशाना चील पर बाँध दिया।

“चील को मत छोड़ो, वह तुम पर झपटेगी।”

मगर बोधराज ने नहीं सुना और गुलेल चला दी। चील को निशाना नहीं लगा। कंकड़ छत से टकराकर नीचे गिर पड़ा और चील ने अपने बड़े-बड़े पंख फैलाए और नीचे सिर किए घूने लगी।

“चलो, यहाँ से निकल चलें,” मैंने डरकर कहा।

“नहीं, हम चले गए तो चील बच्चों को खा जाएगी।”

उसके मुँह से यह वाक्य मुझे बड़ा अटपटा लगा। वह स्वयं ही तो घोंसला तोड़ने के लिए गुलेल उठा लाया था।

बोधराज ने एक और निशाना बाँधा। मगर चील उस शहतीर पर से उड़ी और गोदाम के अंदर पर फैलाए तैरती हुई-सी आधा चक्कर काटकर फिर से शहतीर पर जा बैठी। घोंसले में बैठे बच्चे बराबर चीं-चीं किए जा रहे थे।

बोधराज ने झट से गुलेल मुझे थमा दी और जेब में से पाँच सात कंकड़ निकालकर मेरी हथेली पर रखे।

“तुम चील पर गुलेल चलाओ। चलाते जाओ। उसे बैठने नहीं देना।” उसने कहा और स्वयं भागकर दीवार के साथ रखी मेज़ को घसीटकर फ़र्श के बीचों बीच लाने लगा।

मैं गुलेल चलाना नहीं जानता था। दो-एक बार मैंने कंकड़ रखकर गुलेल चलाई, लेकिन इस बीच चील गोदाम के दूसरे शहतीर पर जा बैठी थी।



बोधराज मेज़ को घसीटता हुआ ठीक मैना के घोंसले के नीचे ले आया। फिर उसने मेज़ पर एक टूटी हुई कुर्सी चढ़ा दी, और फिर उछलकर मेज़ पर चढ़ गया और वहाँ से कुर्सी पर जा खड़ा हुआ। फिर बोधराज ने दोनों हाथ ऊपर को उठाए, जैसे-तैसे अपना संतुलन बनाए हुए उसने धीरे-से दोनों हाथों से घोंसले को शहतीर पर से उठा लिया और धीरे-धीरे कुर्सी पर से उतरकर मेज़ पर आ गया और फिर घोंसले को थामे ही थामे छलाँग लगा दी।

“चलो, चलो, बाहर निकल चलो।” उसने कहा और दरवाज़े की ओर लपका।

गोदाम से निकलकर हम गराज में आ गए। गराज में एक ही बड़ा दरवाज़ा था, और दीवार में छोटा-सा एक झरोखा। यहाँ भी गराज के आर-पार लकड़ी का एक शहतीर लगा था।

“यहाँ पर चील नहीं पहुँच सकती,” बोधराज ने कहा और इधर-उधर देखकर घोंसले को एक टूटे बक्से पर चढ़कर शहतीर के ऊपर रख दिया।

थोड़ी देर में घोंसले में बैठे मैना के बच्चे चुप हो गए।

बोधराज बक्से पर चढ़कर मैना के घोंसले में झाँकने लगा। मैंने सोचा, अभी हाथ बढ़ाकर दोनों बच्चों को एक साथ उठा लेगा, जैसा वह अक्सर किया करता था, फिर भले ही उन्हें जेब में डालकर घूमता फिरे। मगर उसने ऐसा कुछ नहीं किया। वह देर तक घोंसले के अंदर झाँकता रहा। फिर बोला—

“थोड़ा पानी लाओ, इन्हें प्यास लगी है। इनकी चोंच में बूँद-बूँद पानी डालेंगे।”

मैं बाहर गया और एक कटोरी में थोड़ा-सा पानी ले आया। दोनों नन्हें-नन्हें बच्चे चोंच ऊपर को उठाए हाँफ रहे थे। बोधराज ने उनकी चोंच में बूँद-बूँद पानी डाला और बच्चों को छूने से मुझे मना कर दिया, न ही स्वयं उन्हें छुआ।

“इन बच्चों के माँ-बाप यहाँ कैसे पहुँचेंगे?” मैंने पूछा।

“वे इस झरोखे में से आ जाएँगे। वे अपने आप इन्हें ढूँढ़ निकालेंगे।”

हम देर तक गराज में बैठे रहे। बोधराज देर तक मनसूबे बनाता रहा कि वह कैसे रोशनदान को बंद कर देगा, ताकि चील कभी गोदाम के अंदर न आ सके।

उस शाम वह चील की ही बातें करता रहा।



दूसरे दिन जब बोधराज मेरे घर आया तो न तो उसके हाथ में गुलेल थी और न जेब में कंकड़, बल्कि जेब में बहुत-सा चुग्गा भरकर लाया था और हम दोनों देर तक मैना के बच्चों को चुग्गा डालते और उनके करतब देखते रहे थे।

संवाद

1. अचूक निशानेबाज़ बोधराज का निशाना घोंसले पर बार-बार क्यों चूक जाता है?
2. अपने आस-पास हुए ऐसे प्रसंगों की अपने मित्रों या सहपाठियों के साथ परिचर्चा करें जब किसी ने अपने मूल स्वभाव के विपरीत कोई कार्य व्यवहार किया हो।





तँबे एकला चलो रे

फणीश्वरनाथ रेणु

फणीश्वरनाथ रेणु की यह कहानी भैंस के बच्चे 'पाड़ा' पर केंद्रित है। भैंस का 'पाड़ा' एक अनुपयोगी प्राणी समझा जाता है। इसलिए अक्सर उसकी उपेक्षा की जाती है। लेकिन इस कहानी का 'पाड़ा' उपेक्षा के बावजूद परस्पर आत्मीय व्यवहार से मनुष्य का सहयोगी बन जाता है और अंत में लोगों के लिए प्राण दे देता है।

“बात शुरू होगी उसके जन्म से ही, सात साल पहले से।

यद्यपि उसने पुरुष होकर एक पर्व के दिन जन्म लिया था पर, उसके भूमिष्ठ होने के बाद उसे देखकर लोगों के मुँह विकृत हुए, नाक संकुचित हुई, अमंगल-वचन निकले, सभी के विकृत मुँह से।



उसका जन्म भी जन्माष्टमी की रात में हुआ था, इसलिए मैंने परिवार के लोगों को सुनाकर बार-बार कहा इसका नाम श्रीकृष्ण रख दो।

लोगों को लगा, मैं जले पर नून छिड़क रहा हूँ गँवार पत्नी मुँह बिदकाकर बोली, “ऐ-हे! ई मुआ करकुट्टे-काले का नाम होगा किसन महाराज?”

सभी हँसे। मेरा प्रस्तावित नाम हँसी में उड़ गया। पत्नी का दिया फूहड़ और अपभ्रंश नाम चल गया किसन महाराज!

किसन महाराज के जन्म से मैं परिवार के अन्य सदस्यों की तरह-निराश नहीं हुआ था। घोर श्यामवर्ण, घुँघराले बालोंवाला शिशु। कितना प्यारा!... च: च: ॥

और, दूसरी ओर उसकी छठी के पहले से ही लोगों ने भविष्यवाणी शुरू कर दी— भादो में जन्म हुआ है। कहीं आसिन में कसके झड़ी-बदरी लदी तो किसनजी दो दिन में ही द्वारिकापुरी सिधारेंगे, नंगे पाँव। छि: छि:! किसी बच्चे के बारे में, किसी भी शिशु के संबंध में ऐसी बातें ‘राक्षसगण’ वाला आदमी ही कर सकता है।

छठी की रात में परिवारवालों ने अपने ‘बथान’ के इतिहास पर आँसू बहाया; माँ षष्ठी से प्रार्थना की, परिवार की बड़ी-बूढ़ी ने, “जै मैया छठी! मानुस को दो बेटा, पसु को बेटा। ले जा मैया पाड़ा, दे जा मैया पाड़ी।”... ले जा; माने उठा लो, बलिदान लो। बथान में बेटा-बच्चा कभी मत दो!

आज हमारे परिवार के बथान पर मात्र दो भैंसे हैं। कोसी-कछार पर बसने वाले वार हो वरन के किसान, ज़मींदार भैंस पालते हैं। जिसके बथान पर तीन कोड़ी भैंस न हों, उसे दरिद्र समझा जाता था आज से दस वर्ष पूर्व तक। अब इतनी भैंसें वे ही पोसते हैं जिनका दूध-घी के सिवा और कोई कारोबार नहीं। किंतु, बथान छोटा हो या बड़ा, ग्वाले का हो अथवा किसान का, पाड़े का जन्म सभी अवस्था में मनहूस माना जाता है।

मुझे इसी बात की विशेष प्रसन्नता थी कि उसका जन्म मेरी ही दुखभरी पुकार पर हुआ था इसकी खुराक का अधिकांश क्षीर मुझे ही मिलेगा; दही जिसकी दुर्दिन में इस दुर्लभ शरीर के लिए बहुत बड़ी आवश्यकता थी। दूध-दही हमारे गाँव में भी दुर्लभ पदार्थ हो चुका है और वैद्यजी ने केले की रोटी के साथ सिर्फ दही खाने को कहा है। दही नहीं मिले, मट्टा से भी काम चल सकता है। किंतु खबरदार! न एक ‘रावा’ नमक का, न एक दाना चीनी का।



“मुझे ऐसा लगा था, मेरे कष्ट को दूर करने के लिए ही उसने ठीक समय पर जन्म ग्रहण किया है। अब इस माटी की काया में जो सभी तीर्थों से बढ़कर है, फिर से जान आएगी। अब धर्म बच जाएगा। आसिन की झड़ी-बदरी अथवा माँ षष्ठी इसे उठा भी ले, मेरे ‘दधि-कदली-कल्प’ में कोई बाधा नहीं पड़ेगी।

ऊँये! किसन महाराज बथान पर बोले।

गाँव में उन दिनों अकेला मैं ही ऐसा मर्द-पुरुष था जो दिनभर अपनी खाट पर लेटा टुकुर-टुकुर देखता रहता। भदई-फसल कटनी के दिन थे, लोग खेतों में ही रहते थे दिनभर। उधर, बथान पर किसन महाराज को छोड़कर दूसरा बेटा-बच्चा नहीं। उसकी माँ-मौसी भी खेतों में ही रहतीं।

किसन महाराज को कौए तंग करते, मुझे मस्खियाँ! बेचारा शुभ दिन में धरती पर आया और जन्म से ही अपमान और लांछना सह रहा है। पाड़ी होती तो गले में कौड़ियों की माला के साथ एक टुनटुनी भी पड़ी होती। कोई आँख के कीचड़ पोंछ जाती, हवेली से बाहर निकलकर। कोई बड़ी जतन से दूध में जड़ी घिसकर पिलाती-चुचकारकर। घर की बड़ी-बूढ़ी सदा तीर-धनुष लेकर बथान को अगोरती। उड़नेवाले हर परेवा-पंछी को कौआ समझकर हाँकती-हा-स्-स!

उ-यें-ऐ-ऐं! किसन महाराज ने दुखी होकर पुकारा।

याद है, खड़ाऊँ पहनकर कीचड़ गोबर की गिलगिली ढेरी को पार करके मैं बथान पर गया। अचरज से वह मेरी ओर तकता रह गया था कुछ देर तक। मैंने पूछा था क्या है महाराज? कौए तंग कर रहे हैं?

वह उठ खड़ा हुआ। मैंने उसके घुँघराले बालों को सहलाना शुरू किया। देखा, कई कुकुरमाछियों ने कान के पास अड्डा बना लिया है। एक जोंक न जाने कब से खून पीकर गोल हो गई थी।

उसे सूखी ज़मीन पर ले आया। उसका डगमग करके चलना ठुमकि-ठुमकि प्रभु चलहि पराई!

घाव पर चूना लगा दिया। आँख के कीचड़ को झिंगुनी के पत्ते से पोंछा। कीचड़ ही नहीं, उसकी आँखों से आँसू भी चू रहे थे।

अपने चौपाल के पास, ठीक अपनी खाट के सामने खूँटे से उसे बाँध दिया। स्थान-परिवर्तन से अथवा मेरा साहचर्य पाकर वह प्रसन्न हुआ था, रह-रहकर नाचने की चेष्टा करता।



उस दिन मैंने उसके संबंध में बहुत देर तक सोचा था। आसिन की जानलेवा झपसी से उबर भी जाये, पुरुष होने का पाप जीवनभर भोगना पड़ेगा। तीन-चार साल के बाद ही किसी मेले में बेच दिया जाएगा। पूरब मुलुक से आए हुए व्यापारियों के दल का कोई 'लबाना' (पाड़ा खरीदने वाला) इसके पुट्टे पर हाथ रखकर परीक्षा करेगा अभी तो एकदम बच्चा है। हल में लगने काबिल नहीं लेबोना, एटा लेबोना।

शायद, हर बात में 'लेबोना, लेबोना' सुनकर ही लोगों ने इन व्यापारियों को "लबाना" कहना शुरू किया। लेबोना, लबाना!

उसी दिन किसन महाराज से मैंने अपनी भी तुलना की थी— बेकाम का आदमी, बीमार आदमी, परिवार का बोझ। किसन महाराज को बेचकर परिवारवालों को साठ-सत्तर रुपये प्राप्त हो जाएँगे। मुझे मुफ्त में भी नहीं लेगा कोई! पेट का रोगी चिड़चिड़ा क्यों हो जाता है, यह मैं जानता हूँ।

शाम होने के पहले ही परिवार का सर्वकनिष्ठ सदस्य पाठशाला से वही-बस्ता लटकाकर लौटा और अचरज से ठिठककर हमें देखने लगा। मैंने झिड़की दी थी इस तरह उल्लू की तरह आँखें गोल कर क्या देखता है?

उसे दिखलाकर मैंने पाड़े के मुँह के पास अपना मुँह लाकर चुचकार दिया चु: चु:। ईर्ष्या अथवा आश्चर्य के मारे आदमी के उस पिढ़ी बच्चे ने मेरी ओर घृणा-भरी दृष्टि से देखा। फिर धरती पर थूकता हुआ आँगन की ओर भागा— "राम! राम!! तोबा, तोबा! बाबूजी निरघिन डोम भेल-पाड़ा क थुथनी में चुम्मा लेल!

अपनी हँसी को ओठों से समेटती-सिकोड़ती मेरी पत्नी फिर आई— "ऐ-ऐ! किसन महाराज तो आज दालान पर बँधे हैं।"

"बँधे हैं माने? आज से यह यहीं बँधेगा। इसी जगहा।"

"मालूम है, दूध-पीते पाड़ा का गोवर ठीक ही-ही-ही-ही!"

पेचिश से पीड़ित व्यक्ति की पत्नी को इस तरह दाँत निपोड़कर नहीं हँसना चाहिए कौन समझाए!

"और तुम्हारे बच्चे तो मलयागिर चंदन ही गोवर करते हैं!"

उसकी हँसी और भी ज़हरीली हो गई। जाते-जाते चोट कर गई— "इह! वही जो कहा है न कि दुबला काहे तो 'टिडिस' के मारे। मैं समझती हूँ यह रीस। इनके सामने



न हाथ से गिरे नून, न पात से गिरे चून! सो, रीस कीजिए चाहे खीस, गुस्साइए या पगलाइए। बैदजी ने कहा है, चाय की एक बूँद नहीं।”

बैदजी ने मीठी बोली सुनाना भी मना किया है, शायद मीठी बोली एक बूँद नहीं... हूँ!

शाम तक सभी लोग खेत-खलिहान, पानी मैदान से वापस आए। प्रत्येक व्यक्ति ने पाड़े को पलानी में बँधा देखकर अचरज प्रकट किया, विरोध किया। इधर मेरे मन में गाँठ-पर-गाँठ पड़ती गई— वज्र गाँठ। पाड़ा यहीं बँधेगा।

थोड़ी देर के बाद ही बथान की महिषी आई। हुँकरती-डिकरती बथान पर गई— पाड़ कहाँ-आँ-आँ? किसन महाराज ने पलानी से जवाब दिया— मैं यहाँ आँ-आँ!

पाड़े की माँ को सबसे अधिक अचरज हुआ था।

आज विस्तारपूर्वक उसके संबंध में कहने का अवसर है। सात साल के युवक किसन महाराज के कृत्यों के लिए मुझे अपराधी प्रमाणित करने की चेष्टा की जा रही है। मुझसे जवाब तलब किया गया है।

जानता हूँ, कचहरी में ऐसे बयान आज़ादी की लड़ाई के दिनों क्रांतिकारी लोग ही देते थे, जिन्हें तत्कालीन हाकिम न पढ़ते थे, न सुनते थे। किंतु आपके संबंध में मशहूर हो चुका है कि आप किसी भी मुकदमे की राई-रती तक पढ़ते हैं, सुनते हैं। इसलिए, साहस करके इतना लंबा-चौड़ा बयान तैयार किया है।

तो यह हुई किसन महाराज के बचपन की कहानी।

संक्षेप में कहने पर भी इतना कहना आवश्यक है कि दिन-रात मेरे साथ रहने के कारण वह मेरी हर बात को समझने लगा, और मैं हो गया उसकी भाषा का पंडित।

आसिन में आठ दिनों तक झपसी लदी रही, उस बारा पाड़ा दिन-भर कूदता-फलाँगता रहा, आठों दिना उसकी कृपा से मेरे असाध्य रोग में आशातीत सुधार हुआ। दही खाने से चिड़चिड़ापन भी दूर हो जाता है।

बैदजी ने सुबह-शाम अगहनी धान के खेतों के आसपास टहलने की सलाह लिख भेजी। कहना नहीं होगा, पाड़ा भी मेरे साथ वायु सेवन करने जाता नित्या एहि भाँति बालकांड समाप्ता।

पेट का रोग दूर हुआ, किंतु पेट की चिंता बढ़ गई।



जिस दिन गाँव छोड़कर शहर जा रहा था, पाड़ा बैलगाड़ी के पीछे बहुत दूर तक आया था।” “जा किसन, लौट जा अब!” मेरी बोली कंठ में अटक गई थी।

मेरी अनुपस्थिति में पाड़े को कोई कष्ट न हो, परिवारवाले उसे बेच न दें— पत्नी को प्रत्येक पत्र में याद दिलाता। जब परिवार के एक सदस्य ने ज़िद पकड़ ली तो मेरी पत्नी ने लिखवाया— “कन्हाई बाबू दिन-रात पाड़े की ही बात करते हैं। कहते हैं, लोगों की फसल ‘नुकसान’ करता है। कौन दिन-रात उलहना सुनो। बोल रहे थे कि गाँव का ही मकदूम मियाँ नब्बे रुपया दे रहा है। मैं कहती हूँ, भेज दीजिए कन्हाई बाबू को उनका हिस्सा पैतालीस रुपया। कलेजा फटा जा रहा है उनका।”

रुपये नहीं भेजे। चार दिन की छुट्टी लेकर गाँव आया। गाँव पहुँचकर देखा, जो सोचा था ठीक वही हुआ है। पाड़ा बेच दिया गया है।

मकदूम मियाँ के बथान पर मोटी रस्सी में जकड़े हुए किसन महाराज को देखकर मेरा रोम-रोम कलपने लगा। उसको बस में लाने के लिए मकदूम ने उसे बेरहमी से पीटा था। सारी देह में साटी के दाग लंबे-लंबे पड़े थे।

एक सौ दस रुपये नकद लेकर मकदूम ने पाड़ा छोड़ा। उस बार, गाँव के पाँच पंचों के बीच कह आया— “यह पाड़ा आज से सबका हुआ— गाँव का इलाके का।”

उस बार चार दिन तक पाड़े से ही मन की बातें कीं। पत्नी बोली, “कन्हाई बाबू ने रुपये गिनकर मकदूम के हाथ में पाड़े की रस्सी थमा दी, लेकिन पाड़ा रस्सी तुड़ाकर आँगन भाग आया, मेरे पास। मैं रसोईघर में थी। वहाँ पहुँचकर डिकरने लगा। एह! आँख से लोर झहर-झहर झर रहे थे... ऑयल में छिपने की कोशिश कर रहा हो, मानो।”

इसके बाद की कहानियों मैंने भी सुनी हैं।

जब-जब गाँव आया, एक-न-एक कहानी सुनी पाड़े की। अलौकिक कहिए या असाधारण, कहते हैं पाड़े में कई विशेष गुण प्रकट हुए, क्रमशः।

सूधा तो यह ऐसा निकला कि गाँवभर के बच्चे उसकी पीठ पर सवारी करते। किंतु, बड़े-बूढ़े आदत से लाचार होकर, कभी गाली देकर बात करते तो पाड़े के नथुने से फोंस-फोंस आवाज़ निकलने लगती। एक बार रामबुहारन ने कहा, “सरवा पाड़ा।” बस, सरवा सुनते ही किसन महाराज पैर से खुरी काढ़ने लगा। एक टोकरी धूल उड़ाकर रामबुहारन की आँखों में झाँक दिया।



मकदूम मियाँ के मन से लोभ-मोह दूर नहीं हुआ था, हालाँकि उस पर नज़र पड़ते ही पाड़ा अगिया-बैताल हो जाता। मकदूम हमारे टोले का रास्ता ही भूल गया था, किंतु दिन-रात पाड़े के लोभ में वह तरह-तरह की बातें सोचता। उसने अपने दूर गाँव के एक यगाना से परामर्श किया। मुस्तंड मवेशी चोर यगाना उसको बोला, “लोहे की सिकड़ी और दाँतवाले नाथ से तो शेर भी थर-थर काँपता है। और यह कमबख्त भैंस का पाड़ा?”

एक रात को वे आए, दुपचाप पाड़े की चोरी करने— मकदूम, असगर।

ऐसा लगता है, किसन महाराज ने धूल उड़ाकर उन्हें सचेत करने की चेष्टा की होगी पहले। जब असगर ने भाला फेंककर पुट्टे पर घाव कर दिया तब उसने निरुपाय होकर सीधे हमला बोल दिया होगा। बारी-बारी से चहेटकर उसने मकदूम और असगर के हाथ-पैर तोड़े थे।

इस घटना के बाद ही उसने गाँव की चौकीदारी शुरू की होगी। वह कब से रात में पहरा देता है, किसी को नहीं मालूम। तनुकसाह के पिछवाड़े से किसी की चीख सुनाई पड़ी, एक रात। तनुकसाह के परिवारवाले जगे, किंतु साहस नहीं हुआ पिछवाड़े की ओर जाने का। चीख-पुकार क्रमशः बढ़ती गई, “बचाइए हो गाँव के लोग अरे बाप, मर गए।” लोग हा-हू करते दौड़े आए। देखा, तनुकसाह के पिछवाड़े में एक आदमी लहलुहान पड़ा कराह रहा है और पास खड़ा किसन महाराज रह-रहकर हुँत्था मारता है। चोर ने ही पाड़े की कहानी बताई। जब वह गाँव में घुस रहा था, पाड़े ने उसे अचरज से देखा था। फिर जैसे ही सेंध लगाना शुरू किया, न जाने किधर से आकर पाड़े ने उसे हुँथियाना शुरू किया। तनुकसाह के साथ गाँववालों ने भी एक स्वर से उसे ‘देवहा’ पाड़ा कहकर उसकी पूजा की— सींगों में घी लगाकर, सिर पर अक्षत-दूब डालकर। कच्चा केला उसका प्रिय फल है, मेरी पत्नी ने बताया था। इसलिए तनुकसाह ने दो दर्जन कच्चे केले खिलाए थे किसन महाराज को।

लेकिन दो दर्जन केले खिलाकर उसको नीति-भ्रष्ट नहीं कर सका तनुकसाह। एक दिन सुबह उठकर तनुकसाह ने हाय-हाय कर पंचगुहार की— “पाड़े ने दो बीघे तम्बाकू को रौंदकर समापत्तन कर दिया। दो सौ रुपये का माल मेरा— हाय रे हाया।”

गाँव के किसी पंच ने हमदर्दी नहीं दिखलाई। बच्चे-बच्चे के मुँह से निकला— ठीक किया है। जैसी करनी। परसों ही बेचारे अजवलाल दास के मवेशी की कुरकी



करवाई है, तनुकसाह ने। बेईमानी से तीन सौ रुपये का चिट्ठा बनाया। फिर नालिस करके चुपचाप 'डिगरी' करवा ली थी। अच्छा किया है पाड़े ने।”

दूसरे दिन भरी दोपहरी में तनुकसाह ने चिल्लाना शुरू किया, “देखो, देखो हो लोगो— पाड़ा पगला गया हो ओ ओ।”

गाँवभर के लोगो ने तमाशा देखा, तनुकसाह के चार बीघे में फूली-फुलाई सरसों रौद रहा है पाड़ा; उन्मत्त होकर खेत में दौड़ रहा है इस छोर से इस छोर से उस छोर तक। पीली चदरी चित्थी-चित्थी हो रही है, मानो।

तनुकसाह चुपचाप देखता रहा। उसके मुँह से एक शब्द भी नहीं निकला। उसी शाम को उसने अजबलाल दास से 'डिगरी' की सफ़ाई कर ली असल तीस रुपये लेकर। सूद भी नहीं लिया एक पैसा।

संतोखी ततमा की बेवा मुसम्मात दिनभर किसानों के घर में धान-चावल कूटती छॉटती। तीसरे पहर दौड़ी जाती दो मील दूर टेसन की गुदरी पर हल्दी और हरी मिर्च बेचने। लौटती बेर कभी-कभी गुदरी पर ही दीया-बाती जल जाती। संतोखी की बेवा पाड़े को पुकारती हुई पगडंडी पकड़ती। पाड़े के लिए यह रोज़ एक छीमी कच्चा केला खरीदकर लाती थी। पाड़े के प्रति उसकी भक्ति के पीछे है एक अंधकार की घटना। संतोखी की बेबा ने मेरी पत्नी को सुनाई है—

गाँव के एक प्रतिष्ठित व्यक्ति की नज़र में संतोखी की बेवा बहुत दिन से नाच रही थी।

एक दिन घात में बैठे— पाट के खेत में।

गुनगुन करती, अपने-आप न जाने किससे झगड़ती-बड़बड़ाती संतोखी की बेवा खेत के पास आई। भले आदमी ने अचानक हमला नहीं किया, हालाँकि उनकी अवस्था उस समय जानवर से भी बदतर थी।

बाजाप्ता प्रेम-निवेदन से प्रारम्भ किया बाबू साहब ने।

तीन आने की हल्दी बेचकर, इकन्नी का नून लेकर लौटती हुई संतोखी की बेवा दस रुपये का नोट देखकर काँप उठी थी। लगा, बाबू साहब के पाफिट साँप निकला, फन काढ़े हुए। लेकिन वह चीख नहीं सकी, चिल्ला भी नहीं सकी क्योंकि बाबू साहब पैर पर गिर पड़े।



“छि: छि:, उठिए बाबू साहेब!”

ठीक इसी समय पता नहीं किधर से पाड़ा आकर हाजिरा

पाडे को देखते ही गाँव के नरपुंगव की पुं-शक्ति समाप्त हो गई।

सच कहती हूँ मालकिन, उस दिन किसन महाराज नहीं आ जाता तो मैं डूब चुकी थी, संतोखी की बेवा ने मेरी पत्नी के कानों में फिसफिसाकर कहा था।

किसन महाराज रघुबर महतो के कूप का पानी छोड़ और किसी गड्ढे तालाब में मुँह नहीं रोपता। ठीक दोपहर को रघुबर महतो के कूप के पास आकर खड़ा हो जाता। बूढ़ा रघुबर महतो अपने हाथ से पानी भरकर पिलाता था— नियमपूर्वक। रघुबर महतो के ‘कच्चा-मीठा’ आम के दो पेड़ हैं। आम के मौसम में टिकोला लगते ही पेड़ों के नीचे मचान गाड़कर बैठता बूढ़ा, दिन-रात। पिछले साल बूढ़ा बीमार पड़ा। दिनभर उसकी बेटी बतसिया ने पहरा किया। किंतु रात में? रात में कौन पहरा करेगा?

रघुबर महतो का कहना है, “सूरज डूबने के पहले ही पाड़े ने पेड़ के पास आकर डेरा डाल दिया। फिर दूसरे दिन सुबह जब बतसिया पेड़ के पास गई तो उठा।”

“पाड़ा नहीं, देव है देवा।”

अब अंतिम कहानी। मेरी देखी सुनी।

बिहार विधानसभा में, ज़मीन-हदबंदी के सवाल पर विचार होना अभी भी बाकी हैं। लेकिन, जिस दिन यह प्रस्ताव सदन में पेश हुआ उससे दो माह पहले से ही छोटे-बड़े किसानों के मन में पाप समा गया। ज़िले में किसान और गरीब बँटाईदारों में कई जगह गुत्थमगुत्थी भी हो गई यह तो किसी से छिपा नहीं है।

मुझे भी चिढ़ी गई, गाँव से। ज़मीन-जायदाद में मेरा भी हिस्सा है, इसलिए मुझे स्वयं इस झंझट के समय उपस्थित रहना चाहिए। पत्नी ने लिखवाया, “कन्हाई बाबू कहते हैं कि भैया के कारण ही पैमायस बंदोबस्त के समय पचास बीघे ज़मीन चली गई— मुफ्त में। दान-खैरात करनी हो अपने हिस्से की ज़मीन करें।

गाँव पहुँचते ही मुझे गुप्त सूचना दी, छोटे भाई कन्हाई बाबू ने— “इस बार बँटाई करनेवाले फसल काटकर नहीं ले जाए— सभी बड़े किसान चिंतित हैं। एक चुटकी धान नहीं देंगे बाँटकर वे, सुना है। इसलिए हम लोगों ने, माने आस-पास के कई छोटे-बड़े किसानों ने मिलकर गुप्त परामर्श करके यह तय किया है। नहीं-नहीं।



मैं ऐसा मूर्ख नहीं छतिऔना के शिवशंकर सिंह को चोट पर चढ़ाया है, सबसे पहले। तय हुआ है कि पहले शिवशंकर अपने किसानों की फसल कटवाकर ले जाएँगे— अपने खलिहान पर। इसके बाद हम भी अपने बँटाईदारों से कहेंगे, जब दीगर गाँव का किसान फसल काटकर अपने खलिहान पर ले गया तो हम क्यों तुम्हारे खलिहान पर फसल जाने दें? आप मेहरबानी करके चुप रहिएगा इस बार, नहीं तो।”

मैंने पूछा, “यदि बँटाईदार लोग अपने-आप ही राजी-खुशी से फसल हमारे खलिहान पर ले आए तो?” कन्हाई बाबू तुनककर बोले, “देखिए भैया, आप फिर इस बार सबको फेरे में डालिएगा, लगता है। भला वे क्यों लाएँगे?”

मैंने तर्क छोड़ा नहीं, “क्या आपस में, सुलह से कोई रास्ता नहीं निकल सकता? मान लो यह तय किया जाए कि न किसान अपने खलिहान पर ले जाएँ और न बँटाईदार। गाँव से बाहर एक पंचायती खलिहान बने।”

कन्हाई बाबू चिढ़कर आँगन की ओर चले गए। जाते समय कुछ बोले नहीं, किंतु उनकी मुद्रा बोली— “आपके जैसा मूर्ख कहीं नहीं देखा।”

मेरी पत्नी आँगन से मुँह लटकाकर आई। उसकी दलील सुनकर मैं चुप हो गया— “जब जगह ज़मीन ही नहीं रहेगी तो बात-बच्चे खाएँगे क्या? कन्हाई बाबू कहते हैं कि अखबार की नौकरी भी कोई नौकरी है? सुनते हैं, पिनसिल भी नहीं मिलता। आपके पैरों पड़ती हूँ, आप चुप रहिए।”

चुप रहा मैं पाँच दिन तक। अखबार की नौकरी भी कोई नौकरी है?

पाँचवें दिन अभिसंधि के अनुसार छतिऔना के किसान शिवशंकर सिंह हरवे-हथियार, लुटेरे जन-मजदूरों और लठेतों के साथ ज़मीन पर आ धमके।

गाँव के सभी बटाईदार अवाक् हो गए— यह क्या? अचानक कौन नया कानून पास हो गया? अंधेर है! जुलुम है!!

मुझे लगा, अचानक कुत्सित रोग मधुमेह का शिकार हो गया मैं।

एक-एक कर सभी गरीब बँटाईदार हमारे दरवाज़े पर आए— दौड़ते, रोते-चिल्लाते। “हमें क्या कहने आए हो?”

आप लोग चलकर शिवशंकर बाबू से पूछिए कि—

“उँहँ।”



इसके बाद अभागे बँटाईदारों ने मेरी ओर देखा। बेकारी के समय मैंने भी गरीबों की पार्टी का झंडा ढोया था। संभवतः मेरी खादी की धोती को देखकर ही उन्हें मुझ पर भरोसा हुआ था। मेरे पास गिड़गिड़ाने लगे, “लाल बाबू! यही उचित है? सालभर से खेती में बाल-बच्चे, औरत-मर्द मिलकर हमने फसल लगाया और आज आप लोगों के रहते!”

लाल बाबू चुप रहे। अपने पसीजते हुए दिल को मन-ही-मन पत्थर बनाने की चेष्टा में व्यस्त! आँखें मूँद लीं लाल बाबू ने! बहुत मुश्किल से बोले, “मैं क्या करूँ? मैं क्या कर सकता हूँ? मेरे हाथ में क्या है? अखबार की नौकरी भी कोई नौकरी है? पुलिस का सिपाही होता तो मेरी वरदी का प्रभाव पड़ सकता था।”

हाय छोड़कर वे चले गए।

बँटाईदारों के टोले में कुहराम शुरू हुआ। औरतें छाती पीटने लगीं। बच्चे बिलखने लगे। कुत्ते रोने लगे। उधर खेतों में लुटेरे जन-मजदूरों और लठैतों की सम्मिलित जयध्वनि हुई— होहोहोहो होहोहोहो।

मेरे स्नायु-मंडल पर प्रतिक्रिया शुरू हुई। ऐसे अवसरों पर मेरा शरीर काँपने लगता है, मलेरिया बुखार चढ़ते समय जैसी कँपनी होती है, वैसी ही।

बाबू रे ए-ए। हे ए-ए, अब क्या खाओगे रे ए-ए?

माई-ई-ई। कलेजे पर हँसुआ चला-आ-आ।

“बाल-बच्चे मर जाएँगे।

हाय! हाया।

होहोहोहोहोहोहोहोहोहो॥”

कौन दौड़ी जा रही है? पगली औरत? नाच रही है— लूट ले। लूट ले-रे दुश्मनवाँ लूट ले!..

कौओं का काँव-काँव? अथवा मैं ही पगला गया?

लाल बाबू! आप देवता है। काँव काँव!

लाल बाबू! आप राक्षस हैं। काँव-काँव ॥

लाल बाबू? ‘लाल बाबू? काँव-काँव!!



लाल बाबू! ज़रा खेत पर चलिए।

मैं क्या कर सकता हूँ? मैं मैं!

कौन है? शिवशंकर सिंह का छोटा भाई देवशंकर सिंह? मुझे क्यों बुलाने आया है? मैं कहीं नहीं जा सकता। मुझे बहुमूत्र रोग है। मैं एक डग भी नहीं चल सकता। मैं नशे में चूर हूँ। मैं जानबर हूँ। मुझे कोई क्यों बुलाएगा?

“..... लाल बाबू!” देवशंकर ने कड़ककर मुझे होश में लाने की चेष्टा की। बोला, “आप अपने पाड़े को पुकार लीजिए। वहाँ खेत में।”

क्या खेत में पाड़ा? अर्थात किसन महाराज पहुँच गए हैं धर्मक्षेत्र में, कुरुक्षेत्र में? ऐ! तब फिर क्या जिधर कृष्ण-उधर विजय!! “लाल बाबू जल्दी चलिए।”

“भैया। जाइए ना। पुकार लीजिए पाड़े को।”

मेरी कँपकँपी रुक गई हठात। मेरी घुटती हुई उत्तेजना को रास्ता मिला, “मैं क्यों जाऊँ? पाड़ा मेरा नहीं, सारे गाँव के लोगों का है। मैं क्यों पुकारने जाऊँ? मैं किसी का नौकर नहीं; न तुम्हारा, न तुम्हारे शिवशंकर सिंह का।”

देवशंकर चला गया। पागल औरत रोती-भागती चली गई। कन्हाई बाबू भी चले गए।

खेत से फिर हो-हो की आवाज़ आई। मैंने उत्कर्ण होकर सुना इस बार जयकार अथवा हर्ष-ध्वनि नहीं!— धर्मक्षेत्र से, कुरुक्षेत्र से, किसन महाराज को भगाने के लिए हल्ला किया जा रहा है— हुस्स! होय होय!

मारो। मारो। अ-रे-रे-रे-रे!

दुई। दुईसा। अँह अँह हुस्स!

भाग रे-ए-ए। हो हो हो हो।

शोरगुल बढ़ता गया। अब किसन महाराज अगले पैरों से खुरी काटकर धूल उड़ा रहा होगा।

अश्रुगैसा।

मारो। मारो। होहोहो।



टूट्टाँया टूट्टाँया।

झूठा फायर? अथवा अथवा?

भागो भागो!!

टूट्टाँया

आहा। इस बार झूठा फायर नहीं।

मैं दौड़ा।

खेत पर पहुँचते-पहुँचते किसन महाराज का रथ दूर जा चुका था। परिवर्त-क्रिया के झोंके पर उसकी देह धरधरा रही थी; रह-रहकर पैर झटक रहे थे। किसन

मेरे किसन ने किसी की जान नहीं ली। वह गरीबों के हक की रक्षा कर रहा था। ईट-पत्थरों की मार खाकर भी धूल उड़ाता रहा, सिर्फ़ा चेतावनी देता रहा। फिर लाठी चली। वह अहिंसक रहा। सींगों से डराना, धूल उड़ाना, हिंसा नहीं। तीर और भालों से घायल हुआ, देह छलनी हो गई। तब उसने दो लुटेरे लठैतों के हाथ-पैर तोड़े पटककर। शिवशंकर ने झूठे फायर किए, किंतु देवशंकर ने गोली दाग दी— कलेजे पर! गोली खाकर भी उसने किसी की हत्या नहीं की। मरते-मरते उसने शिवशंकर और देवशंकर को घायल ही किया। वह जान ले सकता था। अंत में गाँव की ओर भागा। भागा नहीं। यह निश्चय ही मेरे पास आ रहा था। मेरी पत्नी के आँचल में मुँह छिपाकर सोने के लिए, रघुवर महतो के कूप का पानी पीने के लिए, संतोखी की बेवा के हाथ से केला खाने के लिए, मेरे बेटे के हाथ से फरही-गुड़ खाने के लिए।

कुछ दूर आया डगमगाया गिरा!

मैंने उसके कान के पास मुँह लाकर पुकारा, “किसन रे! हाय-हाय मैंने तुझे पहले ही क्यों न पुकार लिया? लेकिन मैं जानता हूँ तुम आज मेरे पुकारने पर भी नहीं आते। तुम धर्मयुद्ध से कैसे मुँह मोड़ सकते थे?”

अब मैं पुलिस द्वारा लगाए गए आरोप के जवाब दे दूँ अंत में!

पुलिस की रपट है— मैंने गाँव में अशांति फैलाई है।

उत्तर में निवेदन है— गाँव में सर्वत्र शांति विराज रही है, पवित्र शांति! गाँव के छोटे बड़े किसानों ने अपने बँटाईदारों से कह दिया जहाँ जी में आए ले जाओ फसल



काटकर। शिवशंकर को उसका हिस्सा भदई धान मिल चुका है। कन्हाई बाबू की फसल बँटाईदारों ने कन्हाई बाबू के खलिहान पर ही रखी। कहीं भी किसी किस्म की अशांति नहीं।

किसन की मृत्यु के बाद कुछ लोग उत्तेजित हुए थे, अवश्या किंतु..... सुनकर वे शांत हो गए। रातभर उसकी लाश को घेरकर 'निरगुन' गाए। सब सुबह को धूमधाम से माटी दी गई। उसकी समाधि पर आसपास के दस गाँव के लोगों ने आँसू से गीली मिट्टी दी; बारी-बारी से औरतों ने आचँल पसारकर समाधि पर छाया की। धूप-दीप और शंखध्वनि अशांति नहीं फैलाती।

घटना की खबर शहर पहुँची। खेतिहर मजदूर संघ के मंत्रीजी आए, किसान सभा और कांग्रेस के कार्यकर्ता भी आए। दारोगा साहब आये। कौन-कौन आए, कौन गए, मुझे कुछ नहीं मालूम। किसन की मृत्यु के बाद से ही मेरी बोली बंद थी। आँखें बंद थीं।

समाधि देने के समय एकत्रित लोगों ने बार-बार जय-ध्वनि की थी। सभी अपने को दोषी समझ रहे थे। किसन के बिना सभी अपने को असहाय अनुभव कर रहे थे, इसलिए कभी-कभी सम्मिलित रुदन भी करते थे— हाय-हाय करा। किंतु इससे भी शांति भंग नहीं हुई।

पुलिस रपट में कहा गया है— गरमागरम भाषण दिए गए। लोगों को उभाड़ने के लिए, हिंसात्मक कार्रवाई करने के लिए क्रांतिकारी गीत गाए गए।

जहाँ तक मुझे याद है, भाषण किसी पेशेवर नेता ने नहीं दिया था। गाँव के एक भावुक विद्यार्थी ने अपनी टूटी-फूटी भाषा में तुतलाकर कुछ कहा था, ज़रूर। लेकिन वह कोई गरम बात नहीं थी। उसने कहा, “जब आदमी के दुख को आदमी ने नहीं समझा, किसन महाराज ने पशु होकर भी आदमी का काम किया। आदमी का काम नहीं, देवता का। उसने अपनी जान देकर साबित कर दिया कि हम जानवर से भी गए बीते हैं।”

और, मेरे टोले की चंपा ने अपनी तीनों बहनों के साथ मिलकर विश्वकवि का प्रसिद्ध गीत गाया— “यदि तोर डाक सुने केउ ना आसे..।”

दारोगा साहब ने लिखा है— समाधि पर लाल झंडे गाड़े गए हैं।



इस बात पर, इस विषाद-भरे क्षण में भी मुझे हँसी आ रही है। गाँव के किसी भी देवस्थल पर लाल-सातू का झंडा फहराया जाता है। हनुमानजी का झंडा हो, चाहे माँ चांडेका का रंग लाल ही होता है..।

गाँव के दरजी ने झंडों पर पाड़े की आकृति बनाने की चेष्टा की है, सफ़ेद कपड़े से। मुझे लगता है कि दारोगा साहब ने झंडों में अंकित किसन महाराज के सींगों को हँसिया समझा, पैर को हल, पूँछ को चक्र, मुँह को हथौड़ा! और दोष उनकी दृष्टि का है।

संवाद

1. पशुओं के साथ मनुष्य का सौहार्द और अपेक्षा का भाव पशुओं की उपयोगिता पर निर्भर होती है। इस कथन पर आप अपनी राय रखें।
2. कहानी के आरंभ में किसन महाराज की उपेक्षा गाँव वालों द्वारा की जाती है। लेकिन आगे किन-किन कारणों से किसन महाराज (पाड़ा) गाँव वालों के लिए प्रिय और देवता तुल्य बन जाता है?





गिरगिट का सपना

मोहन राकेश

मोहन राकेश की कहानी 'गिरगिट का सपना' में गिरगिट अपनी यथास्थिति से असंतुष्ट है। वह अपने प्राकृतिक स्वभाव से अलग साँप, नेवला, पेड़ की टहनी और कौवा जैसा बनना चाहता है। लेकिन अंत में वह गिरगिट के रूप में ही अपने को अधिक संतुष्ट पाता है।

एक गिरगिट था। अच्छा, मोटा-ताजा, काफ़ी हरे जंगल में रहता था। रहने के लिए एक घने पेड़ के नीचे अच्छी-सी जगह बना रखी थी उसने। खाने-पीने की कोई तकलीफ़ नहीं थी। आस-पास जीव-जंतु बहुत मिल जाते थे फिर भी वह उदास रहता था। उसका ख्याल था कि उसे कुछ और होना चाहिए था। हर चीज़, हर जीव का अपना एक रंग था। पर उसका अपना कोई एक रंग ही नहीं। थोड़ी देर पहले नीले थे,



अब हरे हो गए। हरे से बैंगनी। बैंगनी से कत्थई। कत्थई से स्याहा। यह भी कोई ज़िंदगी है! यह ठीक था कि इससे बचाव बहुत होता था। हर देखने वाले को धोखा दिया जा सकता था। खतरे के वक्त जान बचाई जा सकती थी। शिकार की सुविधा भी इसी से थी। पर यह भी क्या कि अपनी कोई एक पहचान ही नहीं! सुबह उठे तो कच्चे भुट्टे की तरह पीले और रात को सोए तो भुने शकरकंद की तरह काले! हर दो घंटे में खुद अपने ही लिए अज़नबी! उसे अपने सिवा हर एक से ईर्ष्या होती थी।

पास के बिल में एक साँप था। ऐसा बढ़िया लहरिया था उसकी खाल पर कि देखकर मज़ा आ जाता था। आस-पास के सब चूहे-चमगादड़ सब उससे खौफ़ खाते थे। वह खुद भी उसे देखते ही दुम दबाकर भागता था या मिट्टी के रंग में मिट्टी होकर पड़े रहता था। ज़्यादातर उसका मन यही करता था कि वह गिरगिट न होकर साँप होता तो कितना अच्छा था जब मन आया, पेट के बल रेंग लिए। जब मन आया, कुंडली मारी और फन उठाकर सीधे हो गए।

एक रात जब वह सोया, तो उसे ठीक से नींद नहीं आई। दो-चार कीड़े ज़्यादा निगल लेने से बदहज़मी हो गई थी। नींद लाने के लिए वह कई तरह से सीधा-उल्टा हुआ, पर नींद नहीं आई। आँखों को धोखा देने के लिए उसने रंग भी कई बदल लिए, पर कोई फायदा नहीं हुआ। हल्की-सी ऊँघ आती, पर फिर वही बेचैनी। आखिर वह पास की झाड़ी में जाकर नींद लाने की एक पत्ती निगल आया। उस पत्ती की सिफ़ारिश उसके एक और गिरगिट दोस्त ने की थी। पत्ती खानेभर की देर थी कि उसका सिर भारी होने लगा। लगने लगा कि शरीर ज़मीन के अंदर धंसता जा रहा है। थोड़ी ही देर में उसे महसूस हुआ जैसे किसी ने उसे ज़िंदा ज़मीन में गाड़ दिया हो। वह बहुत घबराया यह उसने क्या किया कि दूसरे गिरगिट के कहने में आकर ख्वाहमख्वाह वह पत्ती खा ली। अब अगर वह ज़िंदगीभर ज़मीन के अंदर ही दफन रहा तो? वह अपने को झटककर बाहर निकलने के लिए ज़ोर लगाने लगा। पहले तो उसे कामयाबी हासिल नहीं हुई, पर फिर लगा कि ऊपर ज़मीन पोली हो गई है और वह बाहर निकल आया है। ज्यों ही उसका सिर बाहर निकला और बाहर की हवा अंदर गई, उसने एक और ही अजूबा देखा। उसका सिर गिरगिट के सिर जैसा ना होकर साँप के सिर जैसा था। वह पूरा ज़मीन से बाहर आ गया, पर साँप की तरह बल खाकर चलता हुआ। अपने शरीर पर नज़र डाली तो वही लहरिया नज़र आया जो उसके पासवाले साँप के बदन पर था। उसने कुंडली मारने की कोशिश की, तो कुंडली लग गई। फन उठाना



चाहा तो, फन उठ गया। वह हैरान भी हुआ और खुश भी। उसकी कामना पूरी हो गई थी। वह साँप बन गया था। साँप बने हुए उसने आस-पास के माहौल को देखा। उसने आस-पास देखा, सब चूहे-चमगादड़ उससे खौफ़ खाए हुए थे। यहाँ तक कि सामने के पेड़ का गिरगिट भी डर के मारे जल्दी-जल्दी रंग बदल रहा था। वह रेंगता हुआ उस इलाके से दूसरे इलाके की तरफ़ बढ़ गया। नीचे से जो पत्थर काँटे चुभे, उनकी उसने परवाह नहीं की। नया-नया साँप बना था, सो इनसब चीज़ों को नज़रअंदाज किया जा सकता था। थोड़ी दूर जाते-जाते सामने से एक नेवला उसे दबोचने के लिए लपका, तो उसने सतर्क होकर फन उठा लिया। उस नेवले की शायद पड़ोस के साँप से पुरानी लड़ाई थी। साँप बन गिरगिट का मन हुआ कि वह जल्दी से रंग बदले ले, पर अब रंग कैसे बदल सकता था? अपनी लहरिया खाल की सारी खूबसूरती उस वक्त उसे एक शिकंजे की तरह लगी। नेवला फुदकता हुआ बहुत पास आ गया। उसकी आँखें एक चुनौती के साथ चमक रही थी। गिरगिट आखिर था तो गिरगिट ही। वह सामना करने की जगह एक पेड़ के पीछे जा छिपा। उसकी आँखों में नेवले का रंग और आकार बसा था। कितना अच्छा होता अगर वह साँप न बनकर नेवला बन गया होता!

तभी उसका सिर फिर भारी होने लगा। नींद की पत्ती अपना रंग दिखा रही थी। थोड़ी देर में उसने पाया कि जिस्म में हवा भर जाने से वह काफ़ी फूल गया है। ऊपर तो गरदन निकल आई है और पीछे को झबैरैली पूंछ। जब वह अपने को झटककर आगे बढ़ा, तो लहरिया साँप एक नेवले में बदल चुका था। उसने आस-पास नज़र दौड़ाना शुरू किया कि अब कोई साँप नज़र आए, तो उसे वह लपक ले। पर साँप वहाँ कोई था ही नहीं। कोई साँप निकल कर आए इसके लिए उसने उछलना-कूदना शुरू कर दिया। कभी झाड़ियों में जाता, कभी बाहर आता। कभी भीतर से ज़मीन को खोदने की कोशिश करता। एक बार जो ज़ोर-से उछला तो पेड़ की टहनी पर टंग गया। टहनी का कांटा जिस्म में ऐसे गड़ गया कि न अब उछलते बने, न नीचे आते। आखिर जब बहुत परेशान हो गया, तो वह मानने लगा कि क्यों उसने नेवला बनना चाहा। इससे तो अच्छा था कि पेड़ की टहनी बन गया होता। तब न रेंगने की ज़रूरत पड़ती, न उछलने-कूदने की। बस अपनी जगह उगे हैं और आराम से हवा में हिल रहे हैं।

नींद का एक और झोंका आया और उसने पाया कि सचमुच अब वह नेवला नहीं रहा वह पेड़ की टहनी बन गया है। उसका मन मस्ती से भर गया। नीचे की ज़मीन से अब उसे कोई वास्ता नहीं था। वह ज़िंदगीभर ऊपर झूलता रह सकता था। उसे यह भी



लगा जैसे उसके अंदर कुछ पत्तियाँ फूटने वाली हों। उसने सोचा कि अगर उसमें फूल भी निकलेगा, तो उसका क्या रंग होता? और क्या वह अपनी मर्जी से फूल का रंग बदल सकेगा? पर तभी दो-तीन कौवे उस पर आ बैठे। एक ने उस पर बीट कर दी, दूसरे ने उसे चोंच से कुरेदना शुरू किया। उसे बहुत तकलीफ़ हुई। उसे फिर अपनी गलती के लिए पश्चाताप हुआ। अगर वह टहनी की जगह कौवा बना होता तो कितना अच्छा था! जब चाहो, जिस टहनी पर जा बैठो और जब चाहो, हवा में उड़ान भरने लगे!

अभी वह सोच ही रहा था कि कौवे उड़ खड़े हुए। पर उसने हैरान होकर देखा कि कौवों के साथ वह भी उसी तरह उड़ खड़ा हुआ है। अब ज़मीन के साथ-साथ आसमान भी उसके नीचे था और वह ऊपर-ऊपर उड़ा जा रहा था। उसके पंख बहुत चमकीले थे। जब चाहों उन्हें झपकाने लगे, जब चाहे सीधे कर लो। उसने आसमान में कई चक्कर लगाए और खूब कांय-कांय की। पर तभी नज़र पड़ी, नीचे खड़े कुछ लड़कों पर, जो गुलेल हाथ में लिए उसे निशाना बना रहे थे। पास उड़ता हुआ एक कौवा निशाना बनकर नीचे गिर चुका था। उसने डरकर आँखें मूंद लीं। मन ही मन सोचा कि कितना अच्छा होता अगर वह कौवा न बनकर गिरगिट ही बना रहता। पर जब काफ़ी देर बाद भी गुलेल का पत्थर उसे नहीं लगा, तो उसने आँखें खोल लीं। वह अपनी उसी जगह पर था, जहाँ सोया था। पंख-वंख अब गायब हो गए थे और वह वही गिरगिट का गिरगिट था। वही चूहे-चमगादड़ आस-पास मंडरा रहे थे और साँप बिल से बाहर आ रहा था। उसने जल्दी से रंग बदला और दौड़कर उस गिरगिट की तलाश में हो लिया जिसने उसे नींद की पत्ती खाने की सलाह दी थी। मन में शुक्र भी मनाया कि अच्छा है, वह गिरगिट की जगह और कुछ नहीं हुआ! वरना कैसे उस गलत सलाह देने वाले गिरगिट को गिरगिटी भाषा में मज़ा चखा पाता।

संवाद

1. गिरगिट अपनी प्रकृति प्रदत्त विशेषताओं से संतुष्ट नहीं है। क्या कभी आपको भी इस तरह की असंतुष्टि हुई है? लिखिए।
2. गिरगिट का सपना साँप, नेवला, पेड़ की टहनी और कौवा बनना था लेकिन जागने पर वह गिरगिट ही क्यों बना रहना चाहता है?





मेहमान की वापसी

मालती जोशी

इस कहानी में मालती जोशी ने एक कुत्ते और बच्चे के माध्यम से पशु के प्रति मन में जगने वाली आत्मीयता को मार्मिक ढंग से चित्रित किया है। कुत्ता 'जॉली' कुछ दिनों के लिए जब अजय के घर में आता है तो अजय उससे डरता है और दूरी बनाकर रहता है लेकिन कुछ दिन साथ रहते-रहते दोनों ऐसे घुल-मिल जाते हैं कि 'जॉली' अजय के घर से जब जाता है तो घर में सन्नाटा छा जाता है और अजय उदास हो जाता है।

अजय रोज़ की तरह सीटी बजाता हुआ घर में घुसा। पर दरवाज़े पर ही उसकी साँस जैसे अटककर रह गई। बरामदे में एक बड़ा-सा अल्लेसेशियन कुत्ता बैठा था, जो बिल्कुल शेर की तरह लग रहा था।



“मम्मी.....!” उसने दरवाज़े के बाहर खड़े होकर जोर से आवाज़ दी उसकी आवाज़ के साथ ही मम्मी बाहर आई। पीछे-पीछे पापा और रॉय अंकल भी थे। साथ में जो थीं, शायद रॉय आंटी थीं।

“अरे अजय! डरते नहीं बेटा,” अंकल ने उसे पुचकारते हुए कहा, “यह काटता थोड़े ही है। आओ, इससे तुम्हारी दोस्ती करा दें। जॉली! कम हियर.... शोक हैंड्स विद अजया”

जॉली आज्ञाकारी बच्चे की तरह उठकर उनके पास आया। उसने अपना दाहिना पंजा उठाया। अजय की डर के मारे जान निकली जा रही थी। पर मेहमानों के सामने रोब बनाए रखने के लिए उसने अपना हाथ धीरे-से जॉली की तरफ़ बढ़ा दिया।

“हाँ, अब दोस्ती हो गई न! अजय, अब जॉली महीनेभर की छुट्टियों में तुम्हारे ही यहाँ रहेगा, उससे कुट्टी मत करना।” रॉय आंटी ने जॉली का मुँह चूमते हुए कहा। मर गए! अजय ने सोचा, “ये इतना बड़ा कुत्ता घर में रहेगा तो मेरा एक दोस्त भी यहाँ पाँव नहीं देगा। मैं भी जैसे जेल में बंद हो जाऊँगा, अब मम्मी की आँख बचाकर जब-तब बाहर नहीं निकला जा सकेगा। ये राक्षस जो बैठा होगा बरामदे में। सारी छुट्टियों का मज़ा किरकिरा हो जाएगा।”

कुत्ते को ढेर-सा प्यार करके और बहुत सारी हिदायतें देकर जब अंकल और आंटी चले गए, तब अजय को पता चला कि वह अकेला ही नाराज़ नहीं है, बल्कि मम्मी भी कोई खास खुश नहीं हैं। उन लोगों के जाने के बाद वे देर तक बड़बड़ाती रही थीं, “अच्छी मुसीबत गले पड़ गई है! अब एक महीनाभर इस बला को कैसे पालेंगे? यहाँ अपना ही गुजारा मुश्किल से हो रहा है।” “अरे भई, वे लोग एक बोरी आटा भी तो उसके लिए रख गए हैं,” पापा ने मम्मी को ठंडा करना चाहा।

“रख गए हैं तो क्या! रोटी तो मुझे ही थपनी हैं!” मम्मी उबल पड़ी। “मत बनाना तुम, मैं बना लूँगा। आखिर दोस्ती तो मुझे ही निभानी है। उन लोगों की मजबूरी थी, नहीं तो वे खुद इसे एक मिनट के लिए भी नहीं छोड़ते हैं।” पापा को भी गुस्सा आ गया था। इस माहौल में घर में बैठना अजय को ज़रा भी अच्छा नहीं लगा। वह चुपचाप पिछले दरवाज़े से खिसक गया और रात के खाने पर ही लौटा। मन ही मन प्रार्थना करता रहा कि हे भगवान, रॉय अंकल के पिता जी को जल्दी से अच्छा कर दो, ताकि वे जल्दी से लौट आएँ और ये मुसीबत हमारे यहाँ से जल्दी



विदा हो जाए। रात के खाने के बाद मम्मी ने मोटी-मोटी रोटियाँ और दूध पापा के सामने रखते हुए कहा, “लीजिए, खिलाइए अपने लाइले को।” पापा रोटियों को मींड़कर उसके कटोरे में डाल आए। ऊपर से दूध भी डाल दिया। पर जॉली ने उस तरफ़ आँख उठाकर भी नहीं देखा। पापा कटोरा उठाकर उसके मुँह के पास ले गए, तो उसने मुँह फेर लिया। पापा परेशान हो गए, आखिर झल्लाकर बोले, “भूख लगेगी तो अपने आप खा लेगा। चलो सो जाओ। “अजय की इच्छा थी, जॉली खाना खा ले, तब सोएँ पर पापा के चले जाने के बाद बरामदे में अकेले खड़े रहने की हिम्मत नहीं पड़ रही थी, सो वह बिस्तर पर जाकर पड़ रहा। घर भर की सारी बत्तियाँ गुल करके सोने की तैयारी हो ही रही थी कि बरामदे से एक करुण आवाज़ उभरी-जॉली के रोने की। “हाय! ये मरा कुत्ता क्या रात को सोने भी नहीं देगा। रोककर अच्छा असगुन कर रहा है।” मम्मी झल्ला रही थीं। “बैठे-बैठे बोर हो गया होगा”, पापा ने कहा। वे उठे जाली को खोला और बाहर घुमा लाये। लौटकर पापा ज्यों ही बिस्तर में घुसे, उसने वही राग अलापना शुरू कर दिया।

“इसका कुछ इलाज करो जी, रात भर में तो मैं पागल हो जाऊँगी!”

कुछ देर बाद जब असह्य हो गया, तब मम्मी ने कहा।

पापा भुनभुनाते हुए उठे और उन्होंने बीच का दरवाज़ा बंद कर लिया।

“नई जगह है, थोड़ी देर बाद ठीक हो जाएगा।”

“लेकिन मेहरबानी करके तुम अब कान मत खाओ। चाहो तो कानों में रुई ठूस लो।” उन्होंने नाराज़ होते हुए कहा।

बंद दरवाज़ों से भी उसकी करुण आवाज़ आती रही, पर पापा के डर के मारे मम्मी चुपचाप पड़ी रहीं। नींद अजय को भी नहीं आ रही थी। उसका मन न जाने कैसा कैसा हो रहा था। उसे पिछली छुट्टियों की याद आ रही थी। बड़े शौक से वह रायपुर अपनी मौसी के पास गया था। सफर तो बड़े आनंद से कट गया था, पर वहाँ पहुँचने पर रात को मम्मी बेतरह याद आई थीं। तकिए में मुँह छुपाकर वह देर रात तक रोता रहा था, तब मौसी ने उसे अपनी गोद में ले लिया था और देर रात तक उसे प्यार से थपथपाती रही थीं। क्या पता जॉली को भी अंकल और आंटी की याद आ रही हो। इस बार जब उसकी रुलाई कान में पड़ी, तो वह सहन नहीं कर सका और धीरे से दरवाज़ा खोल कर बाहर आ गया। जॉली कोने में सिमटकर बैठा हुआ था।



दोपहर की तरह अब वह खूंखार नहीं लग रहा था, बल्कि एक नन्हे-से बच्चे की तरह असहाय लग रहा था। अजय ने साहस बटोरा और उसके पास जा खड़ा हुआ और प्यार से बोला, “जॉली!”

उसने धीरे से गर्दन उठाई और फिर नीची निगाह किए बैठा रहा। अजय ने उसे थपथपाते हुए कहा, “आंटी की याद आ रही है न! वे लोग जल्दी ही आ जाएँगे। हम लोग कल ही चिट्ठी लिख देंगे।”

फिर अजय की नज़र कटोरे पर गई। खाना अभी वैसा का वैसा ही रखा था। उसने बाईं बाँह जॉली के गले में डालकर दाहिने हाथ से कटोरा पास में सरका लिया— “यह क्या! तुमने खाना क्यों नहीं खाया? अच्छे बच्चे कहीं इस तरह ज़िद करते हैं भला!”

अजय की बात चाहे वह न समझा हो, पर उसके स्नेह भरे स्पर्श का जादू काम कर गया था। जॉली ने धीरे से कटोरे में मुँह डाल दिया। जब तक उसने पूरा खाना खा नहीं लिया, अजय वही बैठा रहा।

उस दिन-रात को नींद में भी वही दृश्य बराबर उसकी आँखों के सामने घूमता रहा। उसे लग रहा था, उसने कोई बहुत बड़ा काम कर लिया है। अगले दिन बिस्तर से उठते ही वह बरामदे की ओर दौड़ा, “गुड मॉर्निंग जॉली!” जॉली ने दोनों पंजे उठाकर उसका स्वागत किया तो वह खुश हो गया.. फिर उसने अपनी छोटी-सी मेज़ वहीं लगा ली और जॉली से बातें करता हुआ अपना छुट्टियों के लिए दिया गया “होम वर्क” करता रहा। वह कल शाम सारी कॉलोनी में खबर दे आया था कि हमारे यहाँ वर्मा जी के “शेख” से बढ़कर कुत्ता आया है। सुबह से ही दर्शकों की भीड़ लग गई थी। अजय सहमे हुए बच्चों से कह रहा था—

“पास आओ न! काटता थोड़े है.....जॉली शेक हैड्स विद रमेश!”

लेकिन जब वह अपने एक मित्र के यहाँ जाने के लिए तैयार होने लगा, तो मम्मी ने कहा, “बाबा रे अपने हाथ से उसे खिलाता जा, नहीं तो दिनभर भूखा मरेगा।” मम्मी की आवाज़ में कल की-सी तलखी नहीं थी और अजय को तो यूँ लग रहा था कि वह एकदम बड़ा हो गया है।

गेट के बाहर निकलने के बाद भी वह मुड़कर जॉली को “टा-टा” करना नहीं भूला। वह बेचारा दरवाज़े में ही खड़ा था।



शाम को अजय के वापस लौटने पर भी उसने दरवाज़े में ही पूँछ हिलाकर अजय की अगवानी की। अजय देर तक उसके गले में हाथ डालकर चूमता रहा।

फिर तो जैसे नियम हो गया, जब अजय बाहर जाता, तो जॉली उसे सड़क तक छोड़ने जाता और लेने भी पता नहीं उसने उसके जूतों की आवाज़ कैसे याद कर ली थी। अब शाम को देर तक प्लेग्राउंड पर खेलने में खतरा नहीं था।

लौटते हुए जॉली साथ रहता। मम्मी-पापा फर्स्ट शो देखने चले जाते, तब भी अजय अकेला घर में रह लेता था। अब वह अकेला कहाँ था। दोस्त लोग कुट्टी कर देते तब भी उसे परवाह नहीं थी। उसे खेलने के लिए साथी मिल गया था। अपने इस प्यारे साथी के बिना न तो उसे खाना भाता था न खेलना, दोस्तों के यहाँ तो जैसे वह मज़बूरी में जाता था।

रॉय अंकल की चिट्ठी के जवाब में पापा ने लिख दिया था— जॉली की कोई फिकर न करें। अजय उसकी खूब देख-भाल कर रहा है। तब अंकल ने अजय को एक पिक्चर पोस्ट कार्ड पर “थैंक्स” लिखकर भेजा था। खुशी और अभिमान से अजय फूलकर कुप्पा हो गया था।

लेकिन उस दिन जब वह रोज़ की तरह बाहर से आया तो उसे लिवाने कोई नहीं आया। वह दूर-दूर तक देखता रहा। फिर निराश होकर घर की ओर मुड़ा।

जॉली बरामदे में भी नहीं था। “मम्मी, जॉली कहाँ है?” उसने जूतों के फीते खोलते हुए पूछा। “अपने घर गया...”

“अपने घर...!” वह बुत बना रह गया।

“वे लोग दोपहर ही में आकर उसे ले गए”, मम्मी ने सूचना दी। उनकी भी आवाज़ कुछ नम हो गई थी और अजय? उसकी तो भूख ही गायब हो गई थी, सामने रखी नाश्ते की प्लेट को वह यूँ ही घूरता रह गया था। उसे लग रहा था, अभी कहीं से जल्दी से जॉली आएगा और पास बैठकर बिस्कुट माँगेगा।

नाश्ते की प्लेट वैसी की वैसी ही सरकाकर वह बाहर आया। बरामदे का वह कोना एकदम सूना-सूना लग रहा था। उसकी सारी गृहस्थी वहाँ से उठ गया थी। जगह पहले की तरफ़ साफ़ हो गई थी पर कितनी उदास-उदास लग रही थी। अजय भूल गया था कि जॉली उनके यहाँ सिर्फ़ मेहमान की तरह आया था। आज यह सच उसे बुरी तरह झकझोर गया था।



शाम को वह कहीं खेलने भी नहीं गया। यूँ ही किताबों में सिर दिए बैठा रहा, “तो जॉली बाबू गए!” दफ्तर से आते ही पापा ने कहा। उन्हें पता लग गया था। रॉय अंकल उन्हीं के दफ्तर में तो है।

“गए!” मम्मी ने एक साँस भरकर कहा, “आप नहीं थे दोपहर को, नहीं तो देखते कि कैसे लिपट गया था वह दोनों से। मिसेज रॉय का तो गाड़ी से उतरना मुश्किल कर दिया था। जब तक दोनों ने खूब लाड़ नहीं कर लिया, तब तक बात नहीं करने दी।”

“कुत्ते की यही तो विशेषता होती है। वह प्यार की कीमत जानता है, प्यार करने वाले पर जान छिड़कता है।”

“खाक जानता है प्यार की कीमत!” अजय ने सोचा। “कितना प्यार किया था मैंने उसे अपने दोस्त, अपनी पढ़ाई, अपना खाना-पीना सब कुछ भूल गया था मैं। पर उसे क्या, अंकल-आंटी को देखते ही सब भूल गया होगा।”

खाना एकदम जहर लग रहा था उसे, फिर भी उसने खाया। क्यों भूखा रहे वह एक बेवफा कुत्ते के लिए। वह हज़रत वहाँ मज़े से अंकल और आंटी के हाथ माल खा रहे होंगे। उसे पहली रातवाला जॉली याद आया। कैसे बिलख-बिलखकर रो रहा था! तब कौन आया था समझने?

अभिमान के मारे उसने अपनी रुलाई भी रोक ली थी। चुपचाप बिस्तर पर लेट गया था। सारा घर भांय-भांय कर रहा था। मम्मी ने रोज़ की तरह रेडियो भी नहीं खोला था। न पापा रोज़ की तरह दफ्तर की गप्पें सुना रहे थे। तभी मोटर के तेज़ हॉर्न से उनकी तंद्रा टूटी। घड़ी देखी, साढ़े दस बज रहे थे। इस वक़्त कौन होगा? पापा ने दरवाज़ा खोला।

“माफ़ करना भाई साहब, बड़े बेवक़्त तकलीफ़ दे रहा हूँ लेकिन”

लेकिन रॉय अंकल की बात पूरी होने से पहले ही जॉली तीर की तरह घर में घुसा और अजय के पैरों से ऐसे लिपट गया, जैसे बरसों बाद मिला हो। अजय की सारी शिकायतें आँसुओं में बह गई थीं।



संवाद

1. अजय को जॉली का आना तनिक भी नहीं भाया था लेकिन जॉली के वापस जाने पर अजय क्यों उदास हो गया?
2. आप अथवा आपके किसी मित्र के पास कोई पशु-पक्षी है? आप उनके साथ रह कर कैसा महसूस करते हैं?





सुंदरी

रवींद्र कालिया

रवींद्र कालिया की इस कहानी में 'सुंदरी' एक घोड़ी है। जो जहीर मियाँ के सुख-दुख की साथी है। कहानी में जहीर मियाँ और उनके परिवार के साथ 'सुंदरी' के आत्मीय रिश्ते को चित्रित किया गया है। इस कहानी में दिखाया गया है कि कैसे मनुष्य ही नहीं, पशु भी परिस्थितियों के अनुकूल जीवन जीने का तालमेल बैठा लेते हैं।

सबसे पहले रिक्शा स्टैण्ड खाली हुआ, फिर ऑटो और उसके बाद ताँगा स्टैण्ड। जहीर मियाँ का ताँगा इंतज़ार में ही रह गया। यह कोई नई बात नहीं थी, रोज़ का दस्तूर था। जब से जहीर मियाँ की बाईं आँख फूटी थी, सबुह-सुबह उसे कोई सवारी न मिलती थी। गाड़ी से एक से एक आधुनिक स्त्री पुरुष उतरते थे, मगर जहीर मियाँ



से आँखें मिलते ही नज़र फेर लेते। कई लोग तो बेशर्मी से थूक देते थे। सवारियों से निराश होकर ज़हीर मियाँ अपनी घोड़ी की गर्दन पर हाथ फेरते हुए उसे घास खिलाते और राज़ की बातें करते। ज़हीर मियाँ का स्पर्श पाते ही घोड़ी अपने नथुने फैलाती और पूँछ हिलाने लगती।

“देख रही हो सुंदरी ज़माने की बेवफ़ाई”, वह सुंदरी के कान के पास फुस्फुसाता, “स्टेशन से पैदल चल देंगे, मगर ज़हीर मियाँ के ताँगे पर न बैठेंगे।”

ज़हीर मियाँ को लगता, सुंदरी रो रही है। वह अपना मैला-कुचैला गमछा कंधे से उतारकर उसकी आँखें पोंछता। सुंदरी की आँखों के कोर पर आँसू सूखकर जैसे जम गए थे। ज़हीर मियाँ आँखें पोंछता जाता और वह दाग जस का तस बना रहता।

“तुम जी छोटा न करो सुंदरी, तुम्हारे लिए मैं खुद घास खोद लाऊँगा, मगर तुम्हीं बताओ रज़िया का क्या होगा? उस नन्हीं जान को तो हर पहर दूध चाहिए। नूरा बेचारी भी क्या करे, अब दूध उतरता ही नहीं।”

ज़हीर अपनी बीवी को नूरा नाम से पुकारता था, जबकि सारा मुहल्ला उसे ज़हीरन कहता था।

ज़हीर मियाँ की नज़रों के सामने बेगम के सूखे स्तन घूम गए। अब तक नौ बच्चों को दूध पिलाया था उसने। अब तो उसका शरीर देखकर रहम आता था। लगता था, सारे का सारा दूध बच्चे पी गए। अब वे दूध की खाली थैलियों की तरह पिचक गए थे। पिचक ही नहीं, सीने से चिपक गए थे।

“बच्चों से अब क्या गिला शिकवा। वे परिंदों की तरह होते हैं, पर निकलते ही उड़ जाते हैं। वैसे अमज़द ज़रा गुस्ताख निकला, वह चाहता तो मुझे इस उम्र में पापी पेट के लिए यों भटकना न पड़ता, उसको भी क्या दोष दूँ, शादी तो उसने मेरे मज़बूर करने पर ही की थी, पर कौन जानता था वह यों तमन्ना का ज़रखरीद गुलाम हो जाएगा और अपने भाई बहनों को भूलकर अलग से घर-गिरस्ती बसा लेगा।”

सुंदरी ने अपनी गर्दन उठा दी। ज़हीर मियाँ उसकी गर्दन के नीचे सहलाने लगा। सुंदरी को जब उस पर लाड या रहम आता है तो यों ही गर्दन उठा दिया करती है। उस समय ज़हीर मियाँ सब-कुछ भूल जाता और बक-बक बंद कर देता। उसने मन-ही-मन तय किया कि इस जुमेरात को वह शाह की मज़ार पर अकीदत पेश करने ज़रूर जाएगा। शाह में उसका अटूट विश्वास है। वह तो अब तक ताँगा बेचकर कोई और



धंधा कर रहा होता कि अचानक उसके भीतर आवाज़ उठी थी, “जा स्टेशन लौट जा, जी छोटा न करा।” ज़हीर मियाँ की जेब में सवा रुपया था, उसने उसी वक्त इन पैसों से अगरबत्ती, मीठे चने और फूलों की एक छोटी सी माला खरीदकर पीर साहब के कदमों में पेश कर दी और मन्नत माँगी कि धंधा फिर से चल निकला तो वह सालभर के भीतर एक खूबसूरत चादर चढ़ाएगा। वह “पीरों वे मेरा पीर सबका वली है, नाम अली है, अली है” गुनगुनाते हुए स्टेशन की तरफ़ चल दिया।

उस रोज़ स्टेशन पर सचमुच चमत्कार हो गया था। वह स्टेशन पहुँचा तो उसने देखा ताँगा स्टैण्ड पर एक शख्स जैसे उसी के इंतज़ार में खड़ा था। ज़हीर मियाँ को पहचानने में एक लम्हा न लगा कि साहब कि एक आँख पत्थर की है। वह शख्स होंठों में चुरुट दाबे थे और उसके गले में कैमरा लटक रहा था।

“कंपनी बाग चलोगे?”

“जी हुज़ूर, तशरीफ़ रखें।” ज़हीर मियाँ अपने गमछे से ताँगे की पिछली सीट झाड़ने लगा। उस शख्स ने भाड़ा भी तय नहीं किया और ताँगे में सवार हो गया। ज़हीर मियाँ का कलेजा धकधक करने लगा। वह शायद मन ही मन सुंदरी से दुआ करने लगा कि देखो सुंदरी, अबके धोखा न देना। ज़हीर के जेहन में पिछला वाक्या कौंध गया।

“उस दिन तुम्हें क्या हो गया था सुंदरी?” यह एक ऐसा सवाल था जो वह सुंदरी से दिन में दो-चार बार पूछ ही लिया करता था, “उस दिन तुमने उदूल हुक्मी न की होती तो मेरे हाथ हरगिज़ तुम पर यों चाबुक बरसाने की गुस्ताखी न करते।”

ज़हीर अपनी वहशीयाना हरकत को यादकर खुद शर्मसार होने लगता। सुंदरी से तो कई बार मुआफ़ी माँग चुका था, मगर सलमा से तो उसके बाद उसकी आँख मिलाने की कभी हिम्मत न पड़ी। यह सोचकर उसकी आँखें नम हो जाती कि क्या सोचती होगी उसकी प्यारी बिटिया, उसकी लख्ते जिगर सलमा, जिसने सपने में भी कभी अय्या से ऐसे सुलूक की तवक्को न की होगी।

उस दिन सुंदरी बरसों बाद ताँगे में जुती थी। जब से सुंदरी शादी ब्याह में जाने लगी थी, ज़हीर मियाँ ने ताँगा पिछवाड़े खड़ा कर दिया था। दिनभर उस पर बच्चे झूलते। उसकी तमाम गदियाँ चिन्दी-चिन्दी हो गईं। ताँगेका हुड भी जगह-जगह से फट गया। ज़हीर मियाँ ने कभी इसके लिए बच्चों को डाँट न पिलाई थी। बेचारे क्या



करें, ले देकर यही तो एक मनोरंजन है उनके पास। वे दिनभर ताँगे पर 'सी सा' खेलते। ताँगा कभी आगे की ओर झुक जाता कभी पीछे की ओर। वे पहली फुरसत में ताँगे पर चढ़ते और उतरते। लग्न के दिनों में सुंदरी इतना कमा कर धर देती कि ज़हीर मियाँ रुपये पैसे को लेकर लगभग बेफिक्र हो गया था। उसे रुपये पैसे की चिंता रहती तो शायद दो-तीन बच्चे कम होते परिवार में। वह दिनभर चादर तान कर सोता, बीवी एक किलो आलू मँगवाती, वह पाँच किलो उठा लाता। पन्नी पीने की लत भी उसे उन्हीं दिनों लगी थी। उसने लाटरी में भी खूब पैसा बर्बाद किया। मगर सुंदरी में भी अब पहले जैसा आकर्षण न रहा था। ज़हीर मियाँ के साथ-साथ वह भी कृषकाय होती जा रही थी। उसकी रंग-बिरंगी कलगी बदरंग हो चुकी थी। उसका दुल्हन से होड़ लेने वाला चमकदार साज बेनूर हो गया था। ज़हीर भाई अक्सर उस नामुराद घड़ी को याद कर सिहर उठता जब अचानक उसकी खुशियों पर वज्रपात हो गया था। जोश, खरोश, शोर-शराबे और शादी की गहमागहमी में अचानक सन्नाटा खिंच गया था, जब बारात के आगे-आगे चलते आतशिए की गलती से एक बड़ा-सा अनार अचानक सुंदरी के ठीक सामने एक बम की तरह फट गया था। बारात में भगदड़ मच गई। बैंड थम गए। दूल्हा घोड़ी से गिर पड़ा। सुंदरी और ज़हीर मियाँ की एक-एक आँख फूट गई। सुंदरी और उसकी आँख क्या फूटी, जैसे ज़हीर परिवार की किस्मत ही फूट गई।

सुनहरे दिनों में ज़हीर ने गाढ़े दिनों के लिए जो कुछ भी बटोर कर रखा था, एक-एक कर बिक गया। बेगम के चाँदी के तमाम ज़ेवरात गिरवी चले गए। सुंदरी के बुरे दिनों का भी आगाज़ हो गया, उसको सुबह-सुबह बाल्टी भर बकरी का दूध पिलाया जाता था, घास के साथ चने भी परोसे जाते थे, दिन में सुबह-शाम मालिश की जाती थी, जिससे उसकी चिकनी खाल पर हाथ फिसलता था। ज़हीर और सुंदरी के इलाज में सब कुछ स्वाहा हो गया, बकरियों तक की बोली लग गई, मगर न ज़हीर की आँख बचाई जा सकी, न सुंदरी की। भुखमरी की नौबत आने पर ज़हीर के ज़ेहन में ताँगा जोतने की बात उठी। बरसों से उपेक्षित ताँगे की सुध ली गई। सीटें टूट चुकी थीं, उन्हें बनवाया गया। कई दिन की मेहनत के बाद ताँगा जोतने लायक हुआ।

ज़हीर ने ताँगा जोतने का जो इरादा किया था, सुंदरी को वह मंज़ूर न हुआ। उस रोज़ सुंदरी को दुल्हन की तरह सजाया गया, सुबह-सुबह मालिश की गई। जिया सुबह-सुबह दो कोस चलकर, मुँह अँधेरे खेत से चने के झाड़ खोद लाया था। सुंदरी ने जी भरकर नाश्ता किया। पूरा परिवार उसकी सेवा में लगा था। नन्हा अरशद उसकी



कलगी उठा लाया, जिसमें चार छह पर ही बचे थे। बेगम ने सुंदरी का साज यानी पोशाक झाड़-पोछ कर जितना चमका सकती थी, चमका दी। एक लंबे अर्से से सुंदरी की पोशाक घर में दरी का काम दे रही थी और उसमें बच्चों के पेशाब की गंध रच बस गई थी। इसी साज पर बेगम ने दो बच्चों को जन्म दिया था और इस साज में उनका बचपन महकता था। ज़हीर की छोटी बेटी बचपन में ही पोलियों की जद में आ गई थी, वह भी घिसटते हुए सुंदरी के पास आ गई और उसकी टाँगों पर हाथ फेरने लगी। गर्ज यह कि ज़हीर का पूरा परिवार कुछ इस तरह से सुंदरी की खिदमत और साज सिंगार में जुट गया, जैसे आज वह लाभ के लिए खाना हो रही हो।

सुंदरी परिवार के इस उत्साह, चाव और देखभाल से ठीक वैसे ही त्रस्त नज़र आ रही थी जैसे स्कूल जाने के लिए तैयार हो रहे छोटे-छोटे बच्चे। वह न पूँछ हिला रही थी, न गर्दना। ज़हीर ने उसे ताँगे में जोत दिया तो वह और ऐंठ गई। इतनी खराब सूरत तो उसने कभी न बनाई थी।

“सुंदरी को यह सब रास नहीं आ रहा” बेगम बोली।

“मेरी प्यारी सुंदरी अभी जिम्मेदारियों से घबरा रही है।” ज़हीर ने कहा और ताँगे पर सवार हो गया। उसने विश्वासपूर्वक लगाम खींची मगर सुंदरी टस से मस न हुई। बेगम भीतर से एक चपाती उठा लाई और उसे बड़े स्नेह से सुंदरी के आगे किया। सुंदरी ने मुँह फेर लिया। वह जैसे अनशन पर चली गई थी। ज़हीर ने ‘च-च’ करते हुए दुबारा लगाम में ढील दी तो सुंदरी ने गुस्से से दो-तीन बार पूँछ पटक दी। अब पूरा परिवार उसकी चिरीरी में लग गया।

ज़हीर मियाँ के अहाते में तमाशबीनों की कमी न थी। यह कहना भी गलत न होगा, उसके अहाते में तमाशबीन ही रहते थे। किसी के पास कोई स्थाई धंधा न था। सब फ्रीलांसर थे। कोई अपने को प्लंबर कहता था तो कोई बढ़ई, मगर किसी के पास औज़ार तक न थे। कुछ लॉटरी जुए का रोज़गार चलाते थे, कोई पेंटर था तो कोई नाई। कभी-कभार ही इन लोगों को काम मिलता था। चोर उचक्कों की भी कमी न थी। कुछ तो सिद्धहस्त चोर उचक्के थे। कुछ न मिलता तो कॉलोनी में रात को किसी कार की स्टैपनी खोल लेते या कूलर का पंप। ये भी उपलब्ध न होते तो मेनहोल खोल कर बेच आते थे। ज़हीर मियाँ की इन लोगों के बारे में कोई अच्छी राय न थी।



सबको जलन हो रही थी कि ज़हीर नए सिरे से ज़िंदगी शुरू करने जा रहा था। मुनीर की एक बैंड पार्टी थी। वह खुद भी शहनाई बजाने में उस्ताद था। एक तरह से वह ज़हीर का हमपेशा था। शादी-ब्याह में ज़हीर की घोड़ी किराए पर जाती थी और मुनीर का बैंड जहाँ जहाँ ज़हीर की घोड़ी जाती, वह मुनीर को बैंड का काम भी दिलवा देता। मुनीर को काम मिलता तो वह ज़हीर की घोड़ी की सिफ़ारिश कर देता। ज़हीर की घोड़ी को भी सहज रूप से एहसास हो जाता कि ये मुनीर के बैंड के सुर हैं। ज़हीर के मँझले बेटे जिया ने बचपन से ही बाँसुरी बजाने में महारत हासिल कर ली थी। मुनीर ने उसे भी अपनी बैंड पार्टी में भर्ती कर लिया था। बैंड में उसे बाँसुरी तो नहीं, एक बड़ा-सा डफलीनुमा झुनझुना बजाने का काम मिला था। जब से ज़हीर और सुंदरी की आँख फूटी थी, मुनीर का रवैया भी बदल गया था। जिया की भी उपेक्षा करने लगा था। उसने ताँगे में ज़हीर की घोड़ी को जुते देख तो बहुत भद्दी टिप्पणी कर दी, “ज़हीर भाई क्या बात है, तुम्हारी बीवी ही नहीं घोड़ी भी सूखकर काँटा हो गयी है।”

“दो साल से ज़हीर के यहाँ बच्चा भी नहीं हुआ, लगता है नसबंदी करवा ली है।” जमील ने कहा।

ज़हीर पहले ही परेशान खड़ा था, हाथ जोड़कर बोला, “अल्लाह कसम, आज मुझे बख़्श दो। हर वक्त का मज़ाक अच्छा नहीं होता।”

“इसमें मज़ाक की क्या बात है, तुम्हारी घोड़ी तक तुम्हारा साथ नहीं दे रही है।” राजू बोला।

“न देगी।” शकील ने कहा, “बेचारी कब तक कुँवारी बैठी रहेगी। सुंदरी के लिए कोई अच्छा-सा दूल्हा ढूँढ़कर उसके हाथ पीले कर दो।” किसी मनचले ने मशवरा दिया।

ज़हीर की समस्त चेतना अपने ताँगे पर केंद्रित थी। इस फ़्रिकेबाज़ी से बेन्याज़ अपने काम में मशगूल था। ताँगा चलने के लिए तैयार हुआ तो उसने अगली सीट पर बैठकर पेशेवर तरीके से घोड़ी की लगाम खींची। घोड़ी पर इसका कोई असर न हुआ। वह एक ठीठ बच्चे की तरह गुमसुम खड़ी रही। ज़हीर ने हर जतन करके देख लिया, मगर सुंदरी उसका कोई संकेत न समझ रही थी और सरेआम उसकी अवज्ञा कर रही थी और लोग थे कि उसके जले पर नमक छिड़क रहे थे। ज़हीर की बीवी ने



जमघट देखा तो बाहर निकल आई, “जाओ जाओ, अपना रास्ता नापो मियाँ। कुछ तो खुदा से खौफ़ खाओ। एक तो आदमी पहले से ही परेशान है, तुम लोग हुज्जत करके उसका जीना हराम कर रहे हो। जाओ मेरे भाई, हम लोगों को हमारे हाल पर छोड़ दो।”

वह सुंदरी के पास जाकर उसकी गर्दन सहलाने लगी, “जाओ बेटा, इस तरह ज़िद न करो। जाओ, अपने मालिक का कहना मान लो।”

चहल-पहल देखकर उत्सुकतावश ज़हीर की बड़ी बेटा सलमा भी बाहर आ गई। सलमा की पोशाक बहुत तंग और झीनी हो गई थी। झीना कपड़ा बदन के कसाव से कई जगह तार-तार हो गया था। वह अज्ञात यौवना थी, उसको देखते ही हुजूम की दिलचस्पी न ज़हीर में रही, न उसकी घोड़ी में। सबकी निगाहें सलमा के बदन पर तीरंदाज़ी करने लगीं। कुछ देर तक ज़हीर लोगों में यकायक आए इस परिवर्तन को समझ न पाया। सलमा भी अपने तार-तार कपड़ों से बेखबर मासूमियत से सुंदरी को पुचकारने लगी। ज़हीर ने अचानक लोगों की निगाहों का पीछा करते हुए सलमा को देखा तो उसका पारा सातवें आसमान पर चढ़ गया। बाँह के नीचे सलमा के कुर्ते की सीवन उधड़ गई थी। ज़हीर पहले ही लोगों की मस्खरगियाँ सुनते और सुंदरी की चिरौरी करके आजिज आ चुका था। बिटिया के तार-तार कपड़े देखते ही उसने ताबड़तोड़ चाबुक से सुंदरी को पीटना शुरू कर दिया। सुंदरी के बदन पर हंटर की लकीरें छप गईं, मगर उसने न आह की, न तौबा। उसी तरह चुपचाप खड़ी रही, जैसे देशभक्त क्रांतिकारी अंग्रेज़ों के हंटरों को चुपचाप बर्दाशत करते रहते थे।

“यह क्या कर रहे हो अब्बा। यों बेरहमी से न पीटो सुंदरी को।” सलमा के मुँह से बेसाख्ता निकल गया।

सलमा की आवाज़ सुनते ही ज़हीर पर जैसे पागलपन सवार हो गया। वह ताँगे से कूदा और सलमा को चोटी से पकड़कर घसीटते हुए घर के भीतर ले गया। उसका बचा-खुचा गुस्सा अब सलमा पर उतरने लगा। वह लात धँसों से सलमा की पिटाई करने लगा। दरअसल उससे न सुंदरी की धृष्टता बर्दाशत हो रही थी और न सलमा की बेअदब तरुणाई। बच्चों ने अपने अब्बा को कभी इतने बेकाबू तैश में न देखा था। ज़हीर सलमा को पीटते-पीटते थक गया तो निढाल होकर पिछवाड़े पड़ी खटोला चारपाई में धँस गया।



ज़हीरन ने बिला वजह बिटिया को पिटते देखा तो छाती पीटने लगी, “या अल्लाह, किस शैतान का साया इस घर पर पड़ गया है। क्या गुनाह किया था, मेरी फूल-सी बिटिया ने जो रूई की तरह उसकी धुनाई कर दी।”

ज़हीरन ने बिटिया को अपनी बाँहों में भर लिया और अपने पल्लू से उसके आँसू पोंछने लगी। घर में देर तक मौत का सा सन्नाटा छाया रहा। उस दिन शाम तक घर का चूल्हा न जला। ज़हीरन ने भूख से बच्चों को बिलखते देखा तो जाकर मुहल्ले के माअतबर खान साहब के यहाँ चौका बर्तन का काम पकड़ लिया, जिसके लिए ज़हीर कई बार उसे मना कर चुका था। उसने खान साहब से पचास रुपये अग्रिम लिए और तब जाकर घर में दाल-चावल का जुगाड़ हो सका। सबने भरपेट खाना खाया। ज़हीरन ज़हीर के पास भी दाल-चावल की रकाबी रख आई, ज़हीर ने करवट तक न बदली और उसका भोजन कौओं के ही काम आया। शाम तक भी ज़हीर न उठा तो बेगम ने देखा, उसका बदन तवे की तरह तप रहा था, वह बेसुध लेटा हुआ था। अब्बा को इस हालत में देख सलमा भी सुबह की पिटाई भूल गई और अब्बा के उपचार में लग गई। अरशद हकीमजी को बुला लाया। ज़हीर ने कई दिनों के लिए खाट पकड़ ली। वह सुंदरी से खफ़ा था, मगर अपने कठोर व्यवहार के लिए शर्मिंदा भी था।

जब तक ज़हीर अस्वस्थ रहा, ज़हीरन ने घर का मोर्चा संभाल लिया। वह कामकाजी महिला हो गई। खाँ साहब के यहाँ से कभी खाली हाथ न लौटती। रात का बचा भोजन वे लोग ज़हीरन को दे देते। वह बासी भोजन भी बच्चे अँगुलियाँ चाट-चाट कर करते। ज़हीर ने भी स्थितियों से समझौता कर लिया था। कुछ तो बीमारी की मार ने और कुछ बेरोज़गारी ने उसे विनम्र कर दिया था। वह सुंदरी से इतना खफ़ा था, खफ़ा क्या था उससे रूठा था कि कभी बाहर निकल कर सुंदरी को सहलाने भी न गया। पिछवाड़े से ही घर से निकल जाता। सुंदरी हिनहिनाती तो उसे लगता, वह उसे बुला रही है, पर वह अपने पर ज़ब्त करके बैठा रहता।

सुंदरी का जिम्मा ज़िया ने उठा लिया था। वह सुबह-सुबह उसे खेतों में चराने ले जाता। सुंदरी घास पर मुँह मारती और वह किसी पेड़ की छाया में बैठकर बाँसुरी या झुनझुने का रयाज करता। घास चरते-चरते अगर सुंदरी दूर निकल जाती, तो वह बाँसुरी की ऐसी तान छेड़ता कि सुंदरी उस तक चली आती। कई बार वह सुंदरी को रिझाने के लिए उसके सामने देर तक नृत्य करता और अपना झुनझुना बजाते हुए ही वह घर लौट आता। सुंदरी जैसे कच्चे धागे से बँधी उसके पीछे-पीछे चली आती।



अक्सर वह घर लौटकर ज़हीर का स्पर्श पाने के लिए मचल उठती और ज़हीर था कि बाहर ही न निकलता। सुंदरी निराश होकर उछल-कूद मचाती, रस्सा तुड़वाकर भाग निकलना चाहती। ज़िया को एक दिन जाने क्या सूझा कि वह सुंदरी को ताँगे में जोतकर चराने ले गया। सुंदरी भी चुपचाप चल दी, वह जैसे राजाबेटा हो गई थी। इसी खुशी में ज़िया ने खेतों में जी खोलकर नृत्य किया और अपनी डफली बजाई। सुंदरी से उसकी दाँत-काटी दोस्ती हो गई थी।

घर में तय पाया गया कि अब सुंदरी को दुबारा स्टेशन ले जाया जाए। उसी रोज़ ज़हीर ने सुंदरी का मुँह देखा। ज़हीर का स्पर्श पाकर सुंदरी मचलने लगी। उसने हस्बेमामूल अपनी गर्दन ऊपर उठा ली। घर में उम्मीद का दीया फिर से टिमटिमाने लगा। जिस रोज़ सुंदरी स्टेशन के लिए रवाना हुई, ताँगे पर ज़िया के अलावा अख्तर, राशिद, अरशद, तरन्नुम, अफसाना, शगुफ्ता और नाज़ भी सवार हो गयीं। ज़हीर का इरादा फौरन पैसा कमाने का नहीं था। वह महज इतना चाहता था कि सुंदरी को स्टेशन जाने का अभ्यास हो जाये। माशा अल्लाह, एक दिन वह सवारी भी उठाने लगेगा, वह सोचता। बच्चों को स्टेशन का ऐसा चस्का लग गया कि ज़हीरन के काम पर जाते ही एक-एक कर सब स्टेशन पहुँच जाते।

उस दिन जब ज़हीर पहली सवारी बैठाकर कंपनी बाग के लिए रवाना हुआ तो बच्चे भी पीछे चल दिए। उन्हें लग रहा था, पहले जैसे दिन अब दोबारा लौट आएँगे, मगर उनका सपना उसी समय टूटता नज़र आया। स्टेशन के बाहर निकलकर सुंदरी सड़क के बीचो-बीच अचानक ऐंठ गई। बच्चे ज़हीर के गुस्से से वाकिफ थे, वे मन ही मन सुंदरी की खैर मनाने लगे। ज़हीर मियाँ ने बार-बार लगाम खींचकर ढीली छोड़ी, मुँह से चवर्ग का जी भरकर इस्तेमाल किया, मगर सुंदरी जो रूठी थी तो रूठी ही रह गई।

“लगतता है घोड़ी तुम से रूठ गई है।” ताँगे में सवार शाख्स ने कहा।

“हुज़ूर, घोड़ी नहीं, मेरी तकदीर ही मुझसे रूठ गई है।” ज़हीर भाई सुंदरी को बहलाने फुसलाने की कोशिश करता रहा, “बहुत दिन हो गए हैं घास के साथ चना चखे। चलो, आज चने की दावत दूँगा। बस साहब को कंपनी बाग तक छोड़ आओ। चलो मेरी बिटिया।”

ज़हीर मियाँ ने उसकी बाग थाम ली और वह कुछ दूर तक पैदल चलता रहा। पीछे-पीछे बच्चों का जुलूस भी चल दिया। ज़हीर ने लगाम ढीली छोड़कर कई बार



सुंदरी को सरपट दौड़ने का इशारा किया, मगर सुंदरी ने बीच सड़क पर ताँगे का चक्का जाम कर दिया। पीछे रिक्शा वालों की घण्टियाँ और मोटर गाड़ियों के हार्न बजने लगे तो ज़हीर मियाँ बाग थामे-थामे पैदल ही चलने लगे।

“इससे तो बेहतर होता मैं खुद ही पैदल चल देता।” सवारी ने कहा।

“नहीं हुज़ूर आप बैठे रहिए। आप मेरे माई बाप हैं। आप भी उतर जाएँगे तो मेरी बोहनी बिगड़ जाएगी। बरसों बाद ताँगे में जुती है, मेरी घोड़ी। सुंदरी है इसका नाम। बहुत लाड़ प्यार से पाला है मैंने इसको। कभी-चाबुक नहीं चलाया, एक बार चाबुक चलाया और खुद ही बीमार पड़ गया। मेरे लिए तो यह फरिश्ता बन कर उतरी थी। अब तक इसकी बदौलत इतना लंबा चौड़ा कुनबा खड़ा किया मैंने। मगर मेरी तकदीर को यह मंजूर न था।”

“दिलचस्प आदमी लगते हो।” सवारी ने ज़हीर मियाँ की बातों में कुछ दिलचस्पी दिखाई तो ज़हीर ने नम आँखों से अपनी पूरी रामकहानी बयान कर डाली। ज़हीर भाई बीच-बीच में सुंदरी को पुचकारता भी जा रहा था, मगर वह तो जैसे कानों में तेल डाल कर सो गई थी।

“भाई मैं एक ही दिन के लिए शहर में आया हूँ। मेरे पास वक्त बहुत कम है और काम ज़्यादा। बहुत-सी जगहों की तस्वीरें उतारनी हैं, सोचा था दिनभर के लिए तुम्हें साथ कर लूँगा, मगर तुम्हारी सुंदरी के मिज़ाज तो आज सही नहीं हैं। हम अखबार वालों के पास हमेशा वक्त की कमी रहती है।”

“हुज़ूर अपनी नज़रे इनायत बनाए रखें, मैं सुंदरी को समझाता हूँ कि ऐसी सवारी दुबारा न मिलेगी। सुंदरी ने दूल्हे तो बहुत देखे हैं, दर्जनों, बीसियों, यह कहना भी गलत न होगा, सैकड़ों। एक-एक शादी में इतनी रकम हासिल करके लाती थी कि मैंने कभी अपने मुस्तकबिल के बारे में सोचा ही नहीं। आज सड़क पर हुज़ूर, यह सुंदरी मेरी मुश्किलात बढ़ा रही है। आप खुद देख लीजिए, अपनी पाक निगाहों से, कितना परेशान कर रही है मुझे।”

ज़हीर भाई रुआँसा हो गया था। बीच बाज़ार में उसका ताँगा अड़ा था। ज़हीर भाई के दाएँ-बाएँ साईकिल, रिक्शा, ताँगे, टैम्पो सब अपनी रफ़्तार से दौड़ रहे थे और एक उसका ताँगा था कि एक सवारी मिली भी, मगर सुंदरी ने चलना तो दरकिनार ट्रैफिक जाम कर रखा था।



“अल्लाह का करम था कि सुबह-सुबह आप जैसी नेकदिल सवारी मिल गई, वरना मेरी तरफ़ देखकर लोग यों मुँह मोड़ लेते हैं, जैसे किसी मनहूस को देख लिया हो।” ज़हीर ने अपना जख़्म दिखाकर सवारी से सहानुभूति प्राप्त करने की कोशिश की। इसी चक्कर में उसने अपने तरकश का अंतिम तीर भी चला दिया था। वह यह सोचकर आश्वस्त हो गया कि यह शख्स भी उसकी तरह एक आँख का है, इसके कलेजे में उसके लिए थोड़ा रहम ज़रूर होगा और ताँगा नहीं छोड़ेगा। ज़हीर ने देखा, ताँगा सवार ताँगे में बैठे-बैठे तस्वीरें उतार रहा था। ज़हीर भाई ने ताँगे के नीचे लटक रहे झोले से घास का एक पुलिंदा निकाला और सुंदरी को खिलाते हुए उसके कान में बुदबुदाने लगा, “तुम सीधे से चल दो, वरना मुझसे बुरा कोई न होगा, समझी?” सुंदरी ने घास की घूस कबूल न की और सड़क पर ऐसे इत्मीनान से खड़ी रही, जैसे अस्तबल में खड़ी हो।

तभी एक ऑटो रिक्शा पास से गुज़रा। यह किसी फ़िल्म का प्रचार करते हुए जा रहा था। हवा के झोंके की तरह। किसी फ़िल्म का एक गीत-संगीत फिज़ा में भर गया। गीत सुनते ही सुंदरी जैसे चैतन्य हो गई। वह अचानक ऑटो रिक्शा की दिशा है चल पड़ी।

ज़हीर भाई की सवारी समझदार और होशियार थी, सुंदरी की समस्या समझ गई। वह कुछ कहता, इससे पहले ही ज़िया डफलीनुमा झुनझुना बजाते हुए सुंदरी के आगे-आगे नृत्य करते हुए चलने लगा। ज़िया को नाचते देखकर उसके भाई बहन भी सुंदरी के सामने नाचते गाते हुए आगे बढ़ने लगे। सुंदरी चुम्बकीय आकर्षण की तरह उनके पीछे-पीछे चल दी। सुंदरी को देखकर बच्चे दूने उत्साह से नाचने लगे। बच्चे अपने को गोविंदा और शिल्पा शेट्टी से कम न समझ रहे थे। ठुमके पर ठुमके लगाया जा रहा था। ज़िया का झुनझुना और डफली सातवें स्वर पर पहुँच गई थी। नृत्य और संगीत से सम्मोहित सुंदरी ठुमकते हुए ऐसे चल रही थी जैसे उसकी पीठ पर कोई सचमुच का राजकुमार बैठा हो।

ज़हीर एकदम तनावमुक्त हो गया। वह अत्यन्त सावधानी से घोड़ी की लगाम पतंग की डोर की तरह थामे हुए था। घोड़ी का लगाम से रास्ता बताने की बजाय वह बच्चों को निर्देश दे रहा था— “अगले चौराहे से दाएँ मुड़ना है मेरे बच्चों।”

ताँगे की सालम सवारी को भी आनंद आ रहा था, वह अचानक ताँगे से छलांग लगाकर उतरा और इस दृश्य को लेंस बदल-बदल कर कैमरे में उतारने लगा।



कैमरा देखकर बच्चे और उत्साहित हो गए और अरशद ने हाथ से भोंपू बजाते हुए तान छेड़ दी— राजा की आएगी बारात, रँगिली होगी रात, मगन में नाचूँगी।

पैसा मिलने की उम्मीद में बच्चे नाचते गाते पसीना-पसीना हो गए। इस नृत्य मंडली का हुलिया भी विचित्र था। राशिद के बदन पर सिर्फ कच्छा था तो नाज़ के बदन पर सिर्फ चड्ढी। राशिद का कच्छा भी उसका अपना नहीं था बड़े भाई की उतरन थी। ठुमका लगाने से वह बार-बार नीचे सरक जाता। नाचते हुए अपने कच्छे को सही जगह रखना भी उसके नृत्य की विशिष्ट मुद्रा में शामिल हो चुका था। सभी बच्चे नंगे पाँव थे, नंगे पाँव ही नहीं, नंग-धड़ंग ताँगा सवार बच्चों के पीछे-पीछे दौड़ते-दौड़ते तस्वीर उतारते हुए हाँफ गया। रूमाल से अपना चेहरा पोंछते हुए वह ताँगे में सवार हो गया और जहीर भाई की बगल में बैठते हुए बोला, “अच्छा हो मियाँ, अपने ताँगे पर एक टेपरिकार्डर फिट करवा लो। तुम्हारी घोड़ी संगीत प्रेमी है।”

“टेप कैसे फिट करवा लूँ हुज़ूर, मैं पाई-पाई का मोहताज हूँ।”

“अब तो हर चीज़ किस्तों में मिल जाती है। कहीं से किस्त बाँध लो, तुम्हारा धंधा चल निकलेगा।”

“मैं तो सोचता हूँ, सुंदरी पर एक फ़िल्म बननी चाहिए। टी.वी. के लिए एक डाक्यूमेंट्री तो बन ही सकती है।” ताँगा सवार बोला।

“फ़िल्म बन सकती है हुज़ूर?” जहीर का मुँह खुला रह गया।

“ज़रूर बन सकती है। दिल्ली लौटकर मैं अखबारों में सुंदरी और बच्चों के चित्र छपवाऊँगा, हो सकता है किसी प्रोड्यूसर या डायरेक्टर की निगाह पड़ ही जाए।”

“भेरी सुंदरी की तकदीर बहुत बुलंद है हुज़ूर, आप देखिएगा, एक दिन काजोल और माधुरी दीक्षित की तरह नाम कमाएंगी।”

“क्या तुम फ़िल्में देखने के शौकीन हो?”

“था हुज़ूर, अब तो महज पोस्टर देखता हूँ।” जहीर बोला।

कंपनी बाग पहुँचकर सवारी ने ताँगा छोड़ दिया। जहीर ने बहुत इसरार किया कि वह साहब को पूरे शहर की सैर करवा देगा, मगर उसके पास वक्त की कमी थी। उसने घास पर सुस्ता रहे बच्चों के बदहवास चेहरे देखे तो पर्स से सौ का नोट



निकालकर ज़हीर की नज़र कर दिया, “जाओ मियाँ अब घर लौट जाओ, बच्चे बहुत थक गए होंगे।”

ज़हीर ने बाअदब नोट सर आँखों पर लगाया। अब्बा के हाथ में सौ का नोट देख कर बच्चे जैसे अपनी सारी थकान भूल गए। ज़िया ने झूमते हुए डफली बजाई और मस्ती में झुमते नाचते बच्चों का काफिला घर की तरफ़ चल दिया। सुंदरी सचमुच माधुरी दीक्षित की तरह इठलाते चल रही थी। राहगीर रुक-रुक कर यह अनोखा नज़ारा देख रहे थे।

संवाद

1. सुंदरी क्यों अकखड़ बन जाती है और सहलाने-पुचकारने पर भी ताँगे में नहीं जुतना चाहती?
2. कहानी में आए उन बिंदुओं की पहचान करिए जिनसे यह पता चलता है कि सुंदरी सिर्फ़ ज़हीर मियाँ की ही नहीं अपितु पूरे परिवार की चहेती थी।





अरेबा परेबा

उदय प्रकाश

उदयप्रकाश की 'अरेबा-परेबा' कहानी खरगोश के बच्चे और बालक मन के बीच गहरी संवेदना की कहानी है। 'अरेबा-परेबा' की पत्थर के रूप में अचानक तब्दीली बाल मन को बेचैनी से भर देती है। कहानी में बाल मन का वास्तविक चित्रण है। कथावाचक के मन में माँ की मृत्यु के पश्चात भी बचपन की स्मृतियों की ताज़गी बनी हुई है। वृद्ध होने की बात कहानी के अंत में स्पष्ट हुई है।

सभी के शरीर में मस्से कहीं न कहीं होते ही हैं। उनकी संख्या ज़्यादा नहीं होती। हर कोई अपने शरीर में उनकी जगह के बारे में जानता है। उनकी संख्या का भी कुछ-कुछ अनुमान उसे होता है। लेकिन हमारे गाँव में सेमलिया की पूरी देह में मस्से ही मस्से थे।



इतने कि उसे खुद अपनी देह में उनकी जगह और उनकी संख्या के बारे में अंदाज़ा नहीं होगा।

मस्से सबसे ज़्यादा उसके चेहरे पर थे। मस्से भी बड़े-बड़े गोल, चमकीले। चने की दाल या भुट्टे के दानों की तरह चेहरे पर छितराए हुए। उनमें से कोई-कोई तो काफ़ी बड़ा भी था। जैसे चेहरे पर त्वचा का कोई बुलबुला बन गया हो। कुंदरू के आकार का। सेमलिया का रंग काला था।

यह तब की बात है, जब तक बिजली हमारे गाँव में नहीं आई थी। रात में लालटेन, लैंप और दीये जला करते थे। साँझबाती हुआ करती थी। बुआ शाम होते ही पहला दीया जलाकर, सारे घर में उसे फिराने के बाद भगवान के पास रख देती थीं। उस दीये को सब प्रणाम किया करते थे। लैंप को हम 'लंफ' कहते थे।

ढिबरी भी होती थी, जो किसी छोटी-सी शीशी के ढक्कन में छेद बनाकर, उसमें चिथड़े की बत्ती डालकर और उसके काँच के पेट में मिट्टी का तेल भरकर बनाई जाती थी। सेमलिया को याद करते ही ऐसी ही ढिबरी या लालटेन की पीली-धुँधली रोशनी में कौंधता हुआ एक काला, दानेदार, मस्सों से भरा, डरावना चेहरा दिखाई देने लगता। तरल हँसी में डूबी, मिचमिची आँखोंवाला चेहरा।

“आ गया जमदूत!” बुआ सेमलिया को अदरक और तुलसी की चाय देते हुए कहतीं। सेमलिया अपनी हथेली को अँगूठे में लपेटकर टहटी का गर्म गिलास पकड़ता और रात के धुँधलके में धीरे-धीरे हँसता।

इस गाँव से दस मील दूर, एक-दूसरे गाँव सिहाला में भी हमारे खेत थे। सिहाला पहाड़ी के ऊपर, जंगल के पार बसा हुआ एक छोटा-सा गाँव था। हमारे इस गाँव की मिट्टी बलुहन थी, जिससे यहाँ धान, कोदो, कुटकी, तिल जैसी फसलें ही होती थीं। जबकि सिहाला में काली चिकनी मिट्टीवाले खेत थे, जहाँ सब कुछ पैदा होता था। गेहूँ, चना, अलसी और धनिया भी।

सेमलिया ही हमारी खेती देखने महीने-पंद्रह दिन में सिहाला जाता था। जब सेमलिया वहाँ से लौटता तो हमेशा रात ही क्यों होती थी, यह मैं नहीं समझ पाता था। शायद पैदल उतनी दूर चलने, और फिर जैसा लोग कहते थे, जंगल एक ऐसा



चुंबक था, जो सेमलिया को अपने अंदर खींच लेता था और फिर जंगल के भीतर यहाँ-वहाँ भटकने की वजह से सेमलिया को गाँव लौटने में देर हो जाती होगी। मैं इसलिए उसका चेहरा लालटेन या डिबरी की पीली रोशनी में ही देख पाता था।

सिहाला तक पहुँचने के लिए कई पहाड़ी-जंगली नाले और लगभग साढ़े चार मील लंबा, एक घना जंगल पार करना पड़ता था। इसे रिछहाई जंगल कहते थे। इसमें जानवर रहते थे। तेंदुए, हिरण, चीतल, साँभर, रोझा लेकिन सबसे ज्यादा रीछ। जब महुए जंगल में पककर टपकते, तो गाँव की औरतें उन्हें बीनने से डरतीं क्योंकि रीछ औरतों को ही सबसे ज्यादा पकड़ता था। एक बार पड़ोस के गाँव छिलपा की एक औरत को रीछ ने जंगल में पकड़ा तो उसने उसे पहचान लिया। वह फौज से भागकर आया फुनगा गाँव का बिजराज सिंह था।

वैसे कहते हैं एक बार एक डाकिए की लाश रिछहाई जंगल में मिली थी, जिसका सिर किसी रीछ ने ढक्कन की तरह खोलकर उसका भेजा निकाल लिया था। और मनीऑर्डर के रुपये भी ले गया था।

अब तो उस रास्ते के सारे नाले सूख गए हैं। जंगल भी उतना घना नहीं रहा। सरकारी फॉरेस्ट ऑफिसर और ठेकेदारों ने मिलकर काट डाला। जानवर भी नहीं बचे। बस इक्का-दुक्का सियार कभी-कभार ज़रूर दिख जाते हैं।

अब तो हमारे गाँव में लालटेन और दीये भी नहीं जलते। बिजली आ गई है। सेमलिया अब नहीं है।

लेकिन लालटेन की धुँधली-कमज़ोर रोशनी में, मिचमिची आँखों में मुस्कराता उसका काला, दानेदार, मस्सों से भरा डरावना चेहरा अब भी दिखने लगता है।

ऐसा डरावना, जिससे कभी डर नहीं लगता।

‘जमदूत!’ बुआ की आवाज़ उभरती है।

बुआ भी अब नहीं हैं। उनकी किडनी फेल हो गई थी। और मृत्यु के पहले उनकी देह सूज गई थी। जैसे किसी ने पंप से उनके भीतर हवा भर दी हो।

‘मेरे भीतर पानी भर गया है।’ उन दिनों वे कहा करती थीं।

सेमलिया जब रात में हमारे दूसरे गाँव सिहाला से लौटकर आता, तो लालटेन की रोशनी में बाँस के अपने टोकरे में से तरह-तरह की चीज़ें निकालकर आँगन में फैलाता जाता।



हरे-रोएँदार जंगली पड़ोरे, पहाड़ी बेर, शेर की मुखारी, चार-चिरौंजी, कठजमुनी, अमरुक, काँदा, छतनी, पूटू, छीँदकाँद, जंगली करौँदे।

...और सिहाला के तालाब से पकड़ी गई स्वादिष्ट सौर मछली, सरसों के तेल में जिसके तले हुए कोरौरा खाते हुए पिताजी गाँव के दूसरे लोगों के साथ रात में महुए की रासी पीते। और सब लोग ज़ोर-ज़ोर से बोलते।

या फिर जाल में फाँसे गए तीतर, लावा, गुड़रू, पोंडकी।

सेमलिया हर महीने-पंद्रह दिन में यह करिश्मा करता। और उसके डरावने, दानेदार, काले, बीहड़ चेहरे की छोटी-छोटी आँखें ढिबरी या लालटेन की रोशनी में कौँधती रहतीं।

सेमलिया मेरे बचपन का जादूगर था।

सेमलिया ने एक बार मुझे जंगली खरगोश के दो छौने लाकर दिए थे। जंगली खरगोश को हम 'खरहा' कहते थे। उस रात कत्थई-भूरे रंग के दोनों छौने उसने मेरी गोद में डाल दिए थे। पहले मैं डरा। फिर मेरा डर तुरंत ही दूर हो गया। वे दोनों बहुत ही छोटे थे।

मेरी उम्र तब छह-सात साल की थी।

नर्म, मुलायम, भूरी पीठा। मैंने अपनी डरती हुई उँगलियों से उन्हें छुआ। उनके कान खड़े हो गए। उन्होंने चेहरा उठाकर मुझे चौंकते हुए देखा। मेरी उँगलियों के स्पर्श से उनके शरीर में एक सिहरन पैदा हो गई थी।

वे धीरे-धीरे काँप रहे थे।

...और उनके भूरे-कत्थई, नर्म रोंयों में से एक अपरिचित-सी तेज़ गंध निकलकर आँगन के अँधेरे में फैल रही थी। लालटेन की मद्धिम रोशनी उस गंध में डूब गई थी और धीरे-धीरे मेरी साँस के साथ मेरे भीतर तक उतर रही थी। मैं हर तरफ़ से उस गंध से घिर गया था, जैसे कोई पानी के भीतर की गहराई में चारों ओर पानी से घिरता है।

यह कितना रोमांचकारी था। कितना अजबा वे ज़िंदा थे। बिल्कुल जीवित। वे दूसरे खिलौनों की तरह नहीं थे। वे साँस ले रहे थे। उनके शरीर धीरे-धीरे काँप रहे थे। और जहाँ वे ले आए गए थे, वहाँ की हर चीज़ को वे चौंकते हुए, आश्चर्य और उत्सुकता के साथ चुपचाप देख रहे थे।



“उन्हें भूख लगी है।” सेमलिया ने कहा, “अभी वे इतने छोटे हैं कि दूब या साग-भाजी नहीं खाएँगे।”

“तो?” मैं चिंतित था।

“अभी तो पाँच-सात रोज़ उन्हें दूध पिलाना। फाहे से। फिर वे बड़े हो जाएँगे तो अपने आप पत्तियाँ खाने लगेंगे।”

‘फिर?’

“फिर तुम्हारे साथ ये खेलेंगे। फिर तो इन्हें अपने कंधे पर बिठाकर घूमना।”

“ये तू क्या ले आया, जमदूत!” बुआ ने सेमलिया को तुलसी और अदरक की चाय देते हुए कहा। वे सेमलिया को हमेशा यही कहती थीं— ‘जमदूत!’

“नन्हें को घर में बाँधने के लिए जंगल से दो खूँटे ले आया हूँ। अब ये कभी खाना-पीना, किताब-कापी छोड़कर ढोर-डाँगर के साथ जंगल-पतेरा नहीं फिरेंगे।” सेमलिया हँसते हुए चाय सुड़कता रहा।

उस रात बारह-एक बज गए होंगे, मेरी आँखों में नींद के कहीं लक्षण नहीं थे। नींद अगर आती भी तो उसे मैं हरगिज़ न आने देता।

जंगली खरगोश के वे दोनों बच्चे हर पल मेरे भीतर अपने प्रति एक नई उत्सुकता जगाते। हर पल कोई न कोई उनकी एक नई हरकत होती। हर बार वे कुछ नया करते। लालटेन के धुँधले उजाले में उन्होंने अपना एक बिल्कुल अलग संसार बना डाला था। और उनके साथ, उस संसार में मैं भी था।

वे इधर-उधर निरुद्देश्य रेंगते, फिर वापस अपनी पुरानी जगह को खोजते हुए उस ओर लौटते।

कई बार अपने नन्हें-से कोमल शरीर को सिकोड़कर वे कूदने या छलाँग लगाने की कोशिश करते और हर बार आँगन की ज़मीन पर रुई के ढेले की तरह असफल लुढ़क जाते। अभी गति या छलाँग को सँभाल पाने की ताकत उनकी नन्हें कमज़ोर देह में पैदा नहीं हो पाई थी।

वे वास्तव में बच्चे हैं। मुझसे भी छोटे। यह अनुभव वे हर पल मुझे अपनी हरकतों से कराते। और हर पल उनके प्रति मेरा प्यार और गहरा होता जाता। मैं उनके सामने खुद को बड़ा और समझदार अनुभव करता।



वे एक छोटी-सी हरकत करते और मेरे भीतर उमंग और प्यार की एक नई विद्युत पैदा हो जाती। वे इतने अच्छे क्यों थे? मैंने उनमें से एक, जो ज़्यादा छोटा और कुछ अधिक चंचल था, उसको अपनी हथेली में रखकर उठा लिया और अपने होठों को उसकी नाक पर धीरे से छुआया। लेकिन अम्मा ने इसे देख लिया और डाँटा। क्या करते हो? कीड़े चले जाएँगे नाक के भीतर।

वे कटोरे में थोड़ा-सा गाय का दूध और रूई का फाहा लेकर आई थीं।

मैंने रूई के फाहे को दूध में डुबाकर उन्हें दूध पिलाना शुरू किया। वे सचमुच भूखे थे। उनकी लगातार हिलती और कुछ न कुछ सुंघती-सी नाक के नीचे आखिर मुँह कहाँ है, यह पता ही न चलता था। लेकिन देखते ही देखते रूई के फाहे का दूध वे चूस जाते।

मुझे यह भी लगता, जैसे मैं उनकी माँ हूँ।

दोनों में दूध पहले कौन पिएगा, इसके लिए वे एक-दूसरे के शरीर को धक्का भी देते। यह हद थी। ये नन्हें छैने, जिन्होंने अभी कुछ ही दिन पहले अपनी आँखें खोली होंगी, उनके बीच में पेट के लिए ऐसा मुकाबला शुरू हो गया था।

‘ये ठीक बात नहीं। बारी-बारी से दोनों लोग पिएँगे। अच्छे बच्चे लड़ते-झगड़ते नहीं, मिल-जुल के दूध पीते हैं।’ मैंने फुसफुसाकर उन्हें समझाया। बड़े वाले का पेट भर चुका था। उसकी रूचि समाप्त हो चुकी थी और वह अब सुस्त हो चुका था। जबकि छोटा अभी भी फाहे को चूसने में लगा था।

‘अरेबा’ और ‘परेबा’। उस रात यही नाम उन दोनों के मैंने रखे। बड़ा वाला, जो थोड़ा काहिल और सुस्त था, वह अरेबा। और छोटा वाला, फुर्तीला और चंचल-परेबा।

परेबा हमारी भाषा में कबूतर को कहते हैं। लेकिन पालतू, घरेलू या शहरातू कबूतर को नहीं। वे तो बेचारे मामूली कबूतर ही होते हैं। परेबा तो होता है जंगली बिल्कुल बेदाग, अछूता और बनैला। पहाड़ों के ऊपर चट्टानों की संध में बसेरा करता है और दोनों की खोज में दुनियाभर भटकता-उड़ता फिरता है।

वह परेबा ही था, जिसका एक कहानी में गिद्ध से मुकाबला हुआ था। किसकी नज़र कितनी तेज़ है। यानी किसकी आँख कितनी दूर तक देख सकती है। गिद्ध ने सौ मील दूर किसी खेत में मरे हुए एक बैल को देखा। तो परेबा ने उस बैल की लाश से दो हाथ, एक बिच्चा, चार उंगल दूर खेत में गिरे हुए गेहूँ के सात दानों को देख लिया।



सबकी आँखें अपने-अपने पेट में जाने वाली चीजों को देख ही लेती हैं। चाहे वे जहाँ और जितनी दूर हों। चाहे बैल जितनी बड़ी हों, राई या तिल जितनी छोटी।

जब ये दोनों, अरेबा और परेबा, बड़े हो जाएँगे तो ये भी यहाँ से सौ मील दूर किसी खेत की मेंड़, जंगल के मैदान या किसी आँगन के कोने में उगी दूब को दूख लेंगे। और जैसे गिद्ध के पेट में बैल, कबूतर के पेट में गेहूँ का दाना और मेरे पेट में रोटी का कौर जाता है, वैसे ही इनके पेट में दूध जाएगा।

आँखें तो दरअसल पेट की ही होती हैं। भूख ही है, जो सब कुद देखती हैं पेट ही दुनिया को भूख की आँख से देखता हुआ अपना दाना-पानी खोजता है। वह पेट है, जो सबके शरीर को यहाँ-वहाँ दौड़ाता या उड़ाता रहता है।

अचानक ही मैंने ध्यान दिया। अरेबा, यानी बड़ा वाला दूध पीकर अघाया हुआ और आलसी बन चुका छौना, लालटेन की रोशनी में बने उस छोटे से संसार से फरार था। जबकि छोटा वाला परेबा अभी भी फाहे से दूध पीने में लगा हुआ था। हालाँकि उसकी घूंट भरने की रफ्तार अब काफ़ी धीमी पड़ चुकी थी।

कहाँ चला गया अरेबा? मैं डर गया। हमारे घर में तीन बिल्लियाँ आती थी। और एक बिल्ला भी। हम उसे बग्घा कहते थे। वह दिखता भी बाघ जैसा ही था। मोटा, बड़ा, डरावना, घमंड, क्रूर और षड्यंत्रकारी। वह अपने ही बच्चों का गला काटकर उन्हें मार डालता था। कुछ लोग कहते थे कि बग्घा दरअसल एक वन-बिलाड़ा था जो जंगल से आता था।

अगर बग्घा ने अरेबा को देख आता था।

मैं लालटेन लेकर उसे आँगन में खोजने लगा। परेबा को मैंने बाएँ हाथ से अपनी छाती में चिपका रखा था। मैंने पूरे आँगन बाएँ हाथ से अपनी छाती में चिपका रखा था। मैंने पूरे आँगन को छान मारा। तुलसी के चौर के पास बेले और गंदे के पौधे उगे हुए थे। वहाँ भी वह नहीं था। रसोई के दरवाजे के दाईं ओर, जहाँ केवड़ा था और जिसमें साँप आकर रहते थे, वहाँ भी वह नहीं था।

“वौ इधर खड़-खड़ कर रहा है।” अम्माँ की आवाज़ आई। मैंने जाकर देखा। परछी के एक कोने में, जहाँ चावल के बोरे रखे हुए थे और सूपा, दौरी, छलनी, कुरई वहीं वह चुपचाप पसर हुआ था। उसकी आँखें नींद में मुंद रही थी।



“अभी बग्घा देख लेता तो तुम अब तक उसके पेट में पहुँच चुके होते, बच्चू!”
मैंने उसकी पीठ को हथेलियों से सहलाया।

“अब तुम भी सोओ और उसे भी सोने दो!” अम्मा की थकी हुई आवाज़ आई।
“मैंने देखो, उनके लिए यहाँ एक घर बना दिया है।”

मैंने देखा, परछी के कोने में, जहाँ परछी और भंडार की दीवारों के बीच एक संकरी-सी जगह छूट गई थी, वहाँ अरेबा-परेबा के लिए अम्मा ने एक घर बना डाला था।

तो इसका मतलब यह हुआ कि मैं जब तक आँगन में रूई के फाहे से अरेबा-परेबा को दूध पिलाने में लगा था, अम्मा इधर अँधेरे में चुपचाप उनका घर बना रही थीं। बिना मुझे बताया।

कितनी अच्छी थीं अम्मा!...और क्या वे अरेबा-परेबा की भी माँ बन गई थीं?

लेकिन अगर ऐसा था तो घर बनाते हुए अम्मा अरेबा और परेबा के बारे में सोच रही थीं या मेरे बारे में? क्या अम्मा के अलावा कोई और अपने जीवन में मेरे बारे में इतना कभी सोचेगा?

मैंने देखा, अम्मा ने पुरानी रज़ाई के टुकड़ों और कई सूती चीथड़ों को उस संकरी जगह में डाल दिया था। मेरी फटी-पुरानी कमीज़ें भी उनमें शामिल थीं। अम्मा ने उस दरार में पीछे की ओर थोड़ी-सी खाली जगह भी छोड़ दी थी, जिससे अरेबा-परेबा रज़ाई और कपड़ों को गीला-गंदा न करें।

“छुच्छू आए तो उधर जाना, समझे! और गुग्गू भी। नहीं तो अम्मा बड़ी ज़ोर से पीटेंगी। समझे!” मैंने दोनों को निर्देश देते हुए, उन्हें उनके घर में रख दिया। अम्मा ने उस संघ को बंद करने के लिए तार की जाली का एक क्वाड भी बना डाला था। दोनों तरफ़ ठोंकी गई दो कीलों में वह जाली का टुकड़ा फँसकर उस संघ को बाहर से बंद कर देता था।

अम्मा ने जब इन कीलों को ठोंका होगा तो आवाज़ क्यों नहीं हुई? शायद मैं उस वक़्त अरेबा को खोजने में लगा था और इतना चिंतित हो चुका था कि मेरे कान दुनिया की कोई भी आवाज़ सुनना बंद कर चुके थे।



लेकिन अम्मा ने तो कोई ढिबरी या दीया भी नहीं ले रखा था। अँधेरे में उन्होंने घर कैसे बनाया? सबसे बड़ी बात कि उन्होंने दीवार पर कील कैसे ठोंकी? अँधेरे में कील न दिखने पर हथौड़े या पत्थर से अँगूठा कुचल जाता है।

“अब तो बगधा भी कुछ नहीं कर सकता।” अम्मा की आवाज़ में निश्चितता और अपनी सफलता की खुशी मिली हुई थी। “चलो तुम भी सोओ! दो बज रहे हैं। सुबह चार बजे तुम्हारे बाबू जी उठ जाएँगे। कल सोमवार है।”

बाबू, यानी पिता जी रविवार को उपवास रखते थे और सोमवार को सुबह चार बजे उठकर नहाते और पूजा करते थे। अम्मा इतनी सुबह उठकर उनके लिए पूरियाँ बनाती थीं। साथ में आलू-परवल की सब्जी या फिर बेसन का मसालेदार मींजा। मींजा को हम शाकाहारी कीमा कहते थे। पूरी के साथ वह बहुत स्वादिष्ट लगता था। इसके अलावा सेवई या हलुवा, दोनों में से कोई एक मीठी चीज़।

“खरगोश क्या पूरी खाते हैं, अम्मा?” मैंने नींद में जाने के ठीक पहले अम्मा से पूछा।

“जब बड़े हो जाएँगे, तो जो-जो तुम खाओगे, वे भी खाएँगे। लेकिन अभी तो तुम सो जाओ। वे भी सो गए हैं।” अम्मा ने कहा।

“मैंने उनका नाम रखा है— अरेबा-परेबा।” यह मैं शायद नींद के भीतर से बोला था। मैं आँखें मूंदकर अभी भी चुपचाप अरेबा और परेबा को देख रहा था। मैंने अपनी नींद के भीतर लालटेन की मद्धिम-पीली रोशनी का वही संसार रच लिया था, जिसमें उनके साथ मैं भी मौजूद था, लेकिन यहाँ मैं सो नहीं रहा था, बल्कि उन्हें सोते हुए देख रहा था।

“अरेबा-परेबा!” अम्मा ने गहरी साँस छोड़ी। वह साँस मेरी नींद के भीतर तक पहुँची। अपने घर में, रज़ाई के टुकड़ों और मेरी फटी-पुरानी कमीज़ पर सोते अरेबा-परेबा के कथई-भूरे, नर्म-मुलायम रोएं अम्मा की साँस से काँप गए। “बहुत अच्छे नाम हैं!” अम्मा ने कहा। “माँ... मतलब तुम्हारी नानी पहले गाया करती थीं—

एहंकी से गइन हैं अरेबा-परेबा,

मारिन हैं मोहिनियाँ बान रे!”

अम्मा नींद के पार से बोल रही थीं और गा रही थीं। मैं अपनी रज़ाई के भीतर एक बहुत गहरी नींद के अँधेरे और कोहरे में धीरे-धीरे डूब रहा था। अरेबा-परेबा की



कहानी मुझे अम्मा ने ही सुनाई थी। वे दोनों शायद ढोला-मारू की कहानी में होते थे और मोहिनी बान चलाया करते थे। क्या वह बान मुझ पर भी उन्होंने चला दिया था?

लेकिन अम्मा कितनी अच्छी हैं दुनिया में! यह मैं उस नींद के भीतर भी जान रहा था। यह बात मैं अम्मा को बोलना भी चाहता था, लेकिन अब मेरी आवाज़ ही पैदा नहीं हो सकती थी। क्योंकि जहाँ से आवाज़ पैदा होती है, वहाँ तो नींद पैदा होकर मेरे मस्तिष्क के भीतर के पूरे आकाश में किसी बादल की तरह फैल गई थी।

उस रात वह नींद पता नहीं कितनी गहरी थी। सुबह मैं देर से उसमें से जागकर निकल पाया। बाबू नहाकर पूजा कर चुके थे। पूरी, मींजा और सेवई खा चुके थे। शेविंग कर चुके थे। अपने गाल पर ब्रश से साबुन का झाग बना चुके थे। फट्... फट्... फट्...।

जबकि इसके पहले मैं हमेशा बाबू के नहाते वक्त, गुसलखाने में से आती बाल्टी, लोटे और पानी की आवाज़ से ही जाग जाया करता था या अम्मा द्वारा कड़ाही के खौलते हुए घी में गोल-गोल पूरियाँ डालते ही पैदा होने वाली छन्छन् की आवाज़ से। हद से हद देर हुई, तो पिताजी की पूजा की आवाज़ से।

नमामि शमीशां निर्वाण रूपं विभुं व्यापकम् ब्रह्म वेद स्वरूपं... मैं रज़ाई हटाकर पलंग पर बैठा ही था कि अम्मा ने देख लिया।

“आ जाओ! कुल्ला करके जल्दी से आ जाओ। बहुत अच्छा मींजा बना है। आज तुम्हारे बाबू जी सोलह पूरियाँ खा गए।”

मैं अपने पलंग से कूदकर भागा। लेकिन रसोई की तरफ नहीं, जिधर से अम्मा आवाज़ दे रही थीं बल्कि उधर की ओर, जिधर मेरी वह नई दुनिया थी, जो रात में मेरे सोने के पहले लालटेन की धुंधली-पीली रोशनी में बनी थी। अब लालटेन या ढिबरी की कमज़ोर रोशनी में नहीं, दिन के उजाले में मैं उन्हें देखूँगा, सेमलिया जिन्हें रात में मेरी गोद में डाल गया था।

मैं सीधा दौड़ता हुआ उसी तरफ़ गया— आँगन पार करता हुआ। ओसारे से कूदता और ड्योढ़ी को फलांगता हुआ। उसी तरफ़, जहाँ अम्मा ने रात में उनका घर बना दिया था। अम्मा अभी भी लगातार रसोई से आवाज़ लगा रही थीं।

लेकिन मैं स्तब्ध रह गया। यह एक तेज़ अविश्वसनीय आघात।



मैंने अपनी आँखें मलतीं। दोबारा उन्हें खोलकर देखा। मैंने भंडार की दीवार को छूकर देखा। नहीं, यह सपना नहीं था। मैं वास्तव में जाग रहा था।

तो क्या सपना वह था, जो मैंने रात में देखा?

लालटेन की पीली, मद्धिम कमज़ोर रोशनी में कौंधता हुआ सेमलिया का दानेदार, मस्सों से भरा, काला, डरावना चेहरा और उसमें अपनी ही तरलता में पिघलती, मिचमिची-सी, हँसती हुई दो आँखें।

सेमलिया ने ही रात में दो जंगली खरहे के बच्चों को मेरी गोद में डाला था। मैंने उनकी कोमल, कत्थई-भूरे रोर्यों से भरी पीठ को छुआ और सहलाया था।

मैंने अपनी उँगलियाँ देखीं।

अम्मा ने कांसे के कटोरे में गाय का दूध लाकर दिया था। मैंने रई के फाहे से उन्हें दूध पिलाया था। सेमलिया को बुआ ने तुलसी और अदरक की चाय लाकर दी थी। और कहा था... 'जमदूत!' मैंने उनके नाम भी रखे थे... अरेबा और परेबा...!

अम्मा ने इसी जगह, अँधेरे में ही, उनके लिए एक घर बनाया था। उसमें रज़ाई और मेरी अपनी पुरानी कमीज़ थी। उस घर में अम्मा ने तार की जाली का एक फाटक भी लगाया था।

जब मैं रात में सो रहा था, तो अम्मा ने मेरी नींद के पार से नानी का गाना भी सुनाया था—

एहंकी से गइन हैं अरेबा-परेबा

मारिन हैं मोहिनियां बान रे...!

लेकिन इस समय ठीक मेरी आँखों के सामने परछी और भंडार के बीच की वही संकरी जगह मौजूद थी। बिल्कुल खाली। यहाँ कोई घर नहीं था। कोई घर कभी रहा भी नहीं होगा। उसमें रज़ाई के टुकड़े, चीथड़े और मेरी पुरानी कमीज़ें नहीं थीं।

वहाँ कोई जाली का दरवाज़ा फाटक नहीं था।

अरेबा-परेबा कहीं नहीं थे। कहीं भी नहीं।

मैंने झुककर अपनी आँखों को दीवार के नज़दीक सटाकर देखा। वहाँ कील ठोकने के निशान ज़रूर दिखाई पड़ रहे थे, लेकिन लगता था, वे बहुत पुराने हैं।



तो अब? मेरे भीतर एक डरावना खालीपन पैदा हुआ। एक भयावह निर्वात और वह मेरे भीतर से उठता हुआ मेरी चेतना में छाने लगा।

मेरे भीतर मेरा सब कुछ लुट चुका था।

“अम्मा!” मैं अपनी पूरी ताकतभर चीखा। इतनी सुबह की ठंड में मेरा कमज़ोर शरीर काँप रहा था। उसमें कोई ताकत नहीं बची थी। धूप के आने में अभी देर थी।

“अम्मा! वे दोनों कहाँ गए!” मैं उत्तेजना, दुख और बदहवासी में दौड़ता हुआ रसोई की ओर गया।

मिट्टी की काली दोहनी में अम्मा गाय का दूध उबाल रही थीं। चूल्हे की आँच को चुपचाप तापती हुई। पास में ही मींजा की बटलोई और सेवई का पतीला ढका हुआ रखा था। पूरियाँ फूल के परात में ढकी हुई रखी थीं।

“कौन दोनों?” अम्मा ने मुझे तटस्थता के साथ चुपचाप देखते हुए कहा।

उनकी आँखें इतनी ठंडी और अजनबी थीं कि मैं भीतर से हिल गया। मुझे विश्वास ही नहीं हो रहा था। अभी कुछ ही पहले, कुछ ही घंटों पहले की रात में, यही अम्माँ दुनिया में सबसे अच्छी हुआ करती थीं। इतनी जल्दी इन्हें क्या हो गया? सुबह होते ही अम्मा इतनी खराब कैसे हो गई?

मैं रो रहा था। मेरे साथ कोई नहीं थी। मैं उलझन और असमंजस में था। क्या सचमुच वह सब कुछ सपना था। अगर ऐसा था, तो वह कितना वास्तविक था। लेकिन मेरे सपने के भीतर सेमलिया कैसे आ गया? मैंने इसके पहले तो कभी भी, अपने किसी भी सपने में उसे नहीं देखा था।

लेकिन कहीं भीतर से मुझे यह कमज़ोर-सा भरोसा भी हो रहा था कि वह सब कुछ एक सपना भर नहीं था। उसमें सच्चाई ज़रूर थी। शायद मेरे साथ कोई न कोई षड्यंत्र हुआ था।

...और इसका सबसे बड़ा प्रमाण था, यहीं इसी जगह, इस रसोई से ही साफ़-साफ़ दिखाई देने वाला, आँगन में पड़ा कांसे का वह कटोरा।

लेकिन कटोरे को तो मैंने कई बार पहले भी आँगन में उस जगह देखा था। अम्मा अक्सर रात का बचा हुआ बासी दूध, जो सुबह तक फट जाता था, बिल्लियों के लिए रख देती थी।



लेकिन फिर उस कटोरे के ठीक बगल में पड़ा रूई का वह फाहा। इसी से तो मैंने रात में उन्हें दूध पिलाया था।

कटोरे का बचा दूध तो रात में बिल्ली पी गई होगी। लेकिन फाहा तो कोई नहीं खा सकता। मैं एक गहरी दुविधा और उलझन में फँसा हुआ था। मेरे दिमाग के भीतर कुछ धागे उलझकर कोई बरस-गांठ बन गए थे, जिसको मैं सुलझाने में लगा हुआ था।

यह एक कठिन गुत्थी थी।

“मुझे बताओ, वे दोनों कहाँ है।” मैं रोते हुए अम्मा से पूछ रहा था।

मेरा मन हो रहा था, चूल्हे पर चढ़ी हुई दोहनी को मैं उलट दूँ और उसके उबलते हुए झागदार दूध में अपने आप को जला डालूँ। इतना कि मैं मर जाऊँ। थोड़ा-बहुत अम्मा को भी जला दूँ लेकिन अम्माँ चुपचाप उठी। चूल्हे पर रखी दोहनी को अपने आंचल से पकड़ा और उसे लेकर भंडार की ओर चली गईं जाते हुए उन्होंने मेरी ओर देखा तक नहीं।

मैं अकेला छूट गया था। अभी-अभी जो रात बीती, उसमें मेरा एक नया संसार बना था, जो अब मिट चुका था। उसका कोई निशान कहीं बाकी नहीं बचा था। उसके बारे में मुझे कोई कुछ बता भी नहीं रहा था।

एक कोई बुलबुला या गुब्बारा था। बहुत बड़ा। साबुन के घोल का, या अरंडी और थूहे के दूध का। जिसके भीतर एक फूकभर हवा रात में फैल गई थी। वह अब फूट चुका था। वहाँ अब कुछ भी नहीं था।

...यहाँ बाहर मैं बचा था। अकेला।

उस दिन मैंने कुछ नहीं खाया। पूरियाँ और मीजा भी नहीं, जो मुझे पसंद थे। जिनके लिए मैं सुबह चार बजे से उठ जाता था और बाबू के नहाने और पूजा कर लेने का इंतज़ार करता रहता था। सेवई भी नहीं।

दोपहर भी मैंने कुछ भी खाने से मना कर दिया। मैंने पानी तक नहीं पिया। कोई लाकर देता, तो मैं गिलास दूर आँगन की तरफ़ फेंक देता।

मुझे दुनिया से और कुछ नहीं, बस वही दोनों चाहिए थे। अरेबा और परेबा। उन्हें कहीं छिपा दिया गया था। मेरे अलावा इस घर में बाकी हर कोई जानता था कि वे



दोनों कहाँ हैं। लेकिन उनके बारे में मुझे कोई नहीं बता रहा था। सब जान-बूझकर ऐसा कर रहे थे।

शायद मेरी पढ़ाई खराब होती। शायद मैं स्कूल न जाता। शायद मैं दिन-दिन भर, किताब-कॉपी छोड़कर, उन्हीं दोनों के साथ भटकता रहता। इसलिए।

सभी ने कोई गुप्त समझौता कर रखा था। सब चुप थे। शायद वे यह सोचते थे कि आखिरकार भूख से हारकर मैं खाना खा लूँगा। भूख मिट जाएगी तो मैं धीरे-धीरे रात की बात भूल जाऊँगा। लेकिन उनको मेरे बारे में कुछ भी पता नहीं था। मैं खाना और पानी क्या, अपने अरेबा और परेबा के लिए, साँस तक लेना छोड़ सकता था।

या फिर शायद वे यह सोच रहे हों कि धीरे-धीरे मुझे यह लगने लगेगा कि वह सब कुछ एक सपना ही था। साबुन और हवा का एक फुगगा। जिसके भीतर रात में एक फूकभर हवा भर गई थी और जो सुबह फूट गया।

लेकिन कितने मूर्ख थे वे। उनकी समझ पर मुझे अफ़सोस होता था। उन्होंने रात की घटना के सारे निशान तो मिटा डाले थे लेकिन रूई का फाहा और कांसे का कटोरा आँगन से गायब करना भूल गए थे।

फिर उस गंध का तो उनको पता ही नहीं था, जो अब तक मेरे कपड़ों में से आ रही थी। जंगली खरहे की अजीब-सी तेज़ गंध।

वह गंध अब भी मेरी साँस के साथ मेरे भीतर तक उतर रही थी।

मैं अरेबा-परेबा को भूल नहीं सकता था। यह असंभव था। उनके साथ रात में जो एक नया संसार बना था, वह संसार अब अमर था।

लेकिन मुझे सबसे गहरा धक्का जिस बात से लगा था और जिससे मैं उबर नहीं पा रहा था, वह बात यह थी कि अम्मा भी उन लोगों के साथ मेरे खिलाफ़ षड्यंत्र में शामिल हो गई थीं। वे ऐसी तो नहीं थीं— उन लोगों ने अम्मा को शायद समझा-बुझा लिया होगा। बाबू अम्मा से कहते भी थे कि तुम बहुत सीधी और मूर्ख हो। तुम दुनिया को नहीं जानतीं।

मेरा मन होता था कि मैं अम्मा से जाकर कहूँ कि तुम उन दोनों को मुझे लौटा दो। मैं खूब पढ़ूँगा-खूब लिखूँगा। मैं हर रोज़ स्कूल जाऊँगा। जब मुझे बहुत तेज़ बुखार होगा तब भी। और जब खूब ज़ोरों की बारिश हो रही होगी और ओले गिर रहे होंगे, तब भी।



अम्मा ने लेकिन इतना बड़ा विश्वासघात मेरे साथ किया था, कि उनसे तो कुछ बोलने का मेरा मन ही नहीं कर रहा था। इस समय सबसे ज्यादा गुस्सा मुझे जिस पर आ रहा था, वह अम्मा ही थीं। खाना न खाकर, पानी न पीकर, अपने आप को कमरे के भीतर कैद करके, गिलास ज़ोरों से फेंककर मैं दरअसल अम्मा को ही दंड दे रहा था। उन्होंने ठीक नहीं किया था मेरे साथ।

मैं अच्छी तरह से जानता था कि अम्मा ने भी आज ने तो पूरियाँ खाई होंगी, न सेवई। उन्होंने दोपहर का खाना भी नहीं खाया होगा। वे बेतरह भूखी होंगी।

यह भी बिल्कुल हो सकता है कि उन्होंने भी आज दिनभर से पानी न पिया हो। मैंने अपने आपको अपने कमरे में कैद कर लिया था।

अगर हर कोई मुझसे चुप है तो मैं भी अब हर किसी से चुप रहूँगा। लो, अब तो खुश रहो। जो तुम कर सकते थे, तुम लोगों ने कर लिया। अब मेरी बारी है।

आखिरकार जब दोपहर ढल रही थी और धूप का रंग बदल रहा था, तब अम्माँ मेरे कमरे में आई। वे चुपचाप मेरे पलंग पर बैठ गईं और मेरे साथे पर अपने हथेली रख दी। उन्होंने मेरा सिर सहलाना शुरू किया। उन्होंने एक-एक कर मेरी उँगलियाँ चटखाईं। उन्होंने मेरे पेट पर अपनी दो उँगलियों का आका-डाका चलाते हुए गुदगुदी पैदा करने की कोशिश की। लेकिन मैं तो पत्थर कर बन गया था। मेरे शरीर में सचमुच इतना अधिक दुख भर गया था कि उसमें गुदगुदी पैदा ही नहीं हो सकती थी।

मैं उन सब लोगों के लिए मर गया था, जिन्होंने मेरे खिलाफ़ षड्यंत्र किया था। और उनमें से अम्मा भी एक थी। कुछ देर बाद अम्मा ने मुझसे बोलना शुरू किया। उनकी आवाज़ में एक अजीब-सी निर्बलता थी। आवाज़ काँप रही थी और कहीं बहुत भीतर से आ रही थी।

“यह ठीक नहीं होगा। अगर मैंने तुम्हें सब कुछ बता दिया, तो भगवान मेरे ऊपर नाराज़ हो जाएँगे। ऐसी बात किसी को बताते नहीं हैं। चाहे वह कोई भी हो।”

कुछ देर अम्मा चुप रहीं, फिर उन्होंने कहा, “मैं बता दूँगी तो मेरे ऊपर बहुत बड़ा पाप लगेगा—महापापा हो सकता है भगवान मुझे इसका दंड भी दे दें। लेकिन तुम बहुत ज़िद्दी हो। यह ठीक नहीं है। आगे चलकर तुम बहुत परेशान और दुखी रहोगे। न तो तुम कुछ खा रहे हो, न पी रहे हो। तुम्हें पता है, अगर कोई एक जून का खाना नहीं खाता तो उसकी देह से एक चिड़िया के बराबर माँस कम हो जाता है।



तुमने दो जून से नहीं खाया। तुम्हारे शरीर में से दो चिड़ियों के बराबर माँस घट गया है।”

और फिर अम्मा ने बहुत सख्ती से मुझे घूरकर कहा, “लेकिन तुम कसम खाकर कहो कि ये बात तुम अब और किसी को, कभी नहीं बताओगे। चाहे कोई कितना भी डराए या लालच दे।”

मैंने कसम खाई। उस बात को जानने की व्याकुलता में मेरा शरीर काँप रहा था। एक-एक पल मुझे भारी लग रहा था। मैं अम्मा के बोलों को लगभग भूल गया था। कहीं अचानक वह अपना निर्णय न बदल दें।

“हुआ रात में यह कि जब तुम सो गए और मैंने नानी वाला गीत गाकर खत्म ही किया था कि ऐसी आवाज़ होने लगी जैसे कोई जीप या कार हमारे आँगन तक आ गई हो। वह सचमुच की आवाज़ थी।

“इतनी रात गए कौन आ गया?” मैंने सोचा, शायद तुम्हारे बड़े ताऊ अपने ट्रैक्टर से आए होंगे। लेकिन मुझे अचरज ये हो रहा था कि ट्रैक्टर यहाँ आँगन तक कैसे आ गया? हमारे घर के तो दरवाज़े ही ऐसे नहीं हैं कि यहाँ भीतर तक कोई ऐसी चीज़ आ सके।

“मैंने किवाड़ खोलकर देखा... तो क्या बताऊँ! आँगन में इतनी तेज़ रोशनी हो रही थी कि आँख को कुछ दिखाई ही नहीं पड़ता था। मैं बुरी तरह से डर गई। एक बात जान लो! वह आवाज़ ट्रैक्टर या जीप-कार जैसी होती हुई भी कुछ अलग ही तरह की आवाज़ थी।

“...और वह रोशनी भी, रोशनी होते हुए भी, बिल्कुल अलग तरह की ही रोशनी थी।

“मैंने सोचा शायद कोई उड़न तश्तरी हमारे आँगन में उतरी है। तभी ओसारे में रखी तिपाई से मेरा पैर टकराया और उसमें रखे पानी का जग और गिलास फ़र्श पर गिर पड़े। जोरों की आवाज़ हुई और बस! फिर तो जैसे वहाँ भूडोल आ गया।”

मैं माँ की एक-एक बात सुन रहा था। उन्होंने मेरी दाई हथेली को कसकर अपनी मुट्ठी में जकड़ रखा था।

“जग और गिलास के तिपाई से गिरने की आवाज़ के साथ ही एक बवंडर जैसा वहाँ उठा और पलक झपकते सब लुप्प हो गया— एकदम गायबा। आँगन में कुछ नहीं, बस अँधेरा बचा था।”



अम्मा बोल रही थीं। उनकी आवाज़ में ऐसा सच था कि उनकी एक-एक बात पर मुझे विश्वास होता जा रहा था।

“मैं सबसे पहले तुम्हारे अरेबा-परेबा को ही देखने गई। वहाँ कुछ नहीं था। उनका घर भी नहीं था। मैं घबरा गई और लौटकर आँगन में आई। और तभी फिर बड़े ज़ोरों की आवाज़ हुई। ऐसा लगा जैसे आँगन में कोई भारी चीज़ गिरी हो।”

मैं सिहर गया था। अम्मा कभी झूठ नहीं बोलती थी। मुझसे बोलने का तो सवाल ही नहीं उठता था।

इसके अलावा, सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि इस वक्त उनके माथे पर तीन झुर्रियाँ बनी हुई थीं। उनकी आँखें भी एक ही जगह ठहरी हुई थीं। मैं जानता था कि ऐसा तब होता था जब अम्मा पूरी सच बोला करती थी। मुझे उनकी बात पर विश्वास हो गया था। मैंने उनकी हथेली कसकर पकड़ ली।

अम्मा ने गहरी साँस ली। जैसे उन्हें किसी बड़े संकट से मुक्ति मिली हो।

“बच गई मैं। अगर उस वक्त मैं आँगन के दक्षिण की तरफ़ होती तो वे दोनों पत्थर मेरे ऊपर ही गिरते। मैंने जाकर उन पत्थरों को देखा, तो चौंक गई।

कुछ देर चुप रहने के बाद अम्मा ने कहा, वे दोनों पत्थर, पत्थर नहीं थे। वे अरेबा-परेबा ही थे। मैंने उन्हें उठाकर घिनौची के नीचे रख दिया है जाओ खुद देख लो।”

मैं अम्मा के साथ वहाँ गया। आँगन के दक्षिणी तरफ़, जिधर हमारा गुसलखाना था, उसी तरफ़ घिनौची थी। लकड़ी के दो खंभों पर टिका हुआ काठ का एक पटरा। हमारे घरभर के पीने के पानी के मटके उसमें रख जाते थे। एक तांबे का, बाकी मिट्टी के। उसी के नीचे, अजब आकार के, बेडौल से, वे दोनों पत्थर रखे हुए थे।

कथई और भूरे रंग के दो पत्थर के ढेले।

मैंने गौर से देखा। वे सचमुच जंगली खरगोश के छौनों की तरह लग रहे थे। उनकी आँखें थीं। पीठ थी। वे सिमट कर बैठे हुए थे। उन्होंने अपने कान सिकोड़ रखे थे। वे डरे हुए लग रहे थे।

“वे लोग शायद देवताओं के बदमाश लड़के थे। अपनी उड़न तश्तरी में वे रात में घूमने निकले होंगे। लगता है जब तुम रात में, आँगन में, अरेबा-परेबा को दूध पिला



रहे थे, तब उन्होंने तुम्हें देख लिया होगा। इसीलिए कहा जाता है कि आधी रात के बाद घर के बाहर नहीं निकलना चाहिए। बाहर पता नहीं किसकी-किसकी आँखें अँधेरे में होती हैं।

“कभी-कभी तो रात की चिड़िया, पहरू या कीड़े-मकोड़े भी देवताओं को धरती की सारी बात बता देते हैं। झींगुरों को तुम कम मत समझो। एक-एक आदमी की दिनभर की सारी बात, वे गा-गाकर सारी रात देवताओं को बताते हैं।

“तुम्हें मालूम है, आदमी के अलावा बाकी हर प्राणी असल में ईश्वर का जासूस होता है। चींटियाँ और मक्खियाँ तका कुत्ते, बिल्ली, बैल और चमगादड़ तका जुगनू भी।”

मैं अवाक होकर उन दोनों पत्थरों को देख रहा था। हाँ, वे अरेबा-परेबा ही थे। मैं दुख में डूब रहा था। कुछ भी हो, मैंने तो उन्हें अब खो ही डाला।

अम्मा लगातार बोले जा रही थीं।

“आदमी लोग सोचते हैं, उन्हें कोई नहीं देख रहा। लेकिन ईश्वर के ये जासूस उन्हें हर पल देख रहे होते हैं। छिपकली, चूहे और मच्छर तक...। यहाँ तक कि पेड़-पौधे और घास भी। कई कीड़े-मकोड़े तो ऐसे होते हैं, जिनकी आँख में कैमरे का लेंस लगा होता है। कौन क्या कर रहा है, एक-एक पल की, धरती के एक-एक कोने की, एक-एक इंसान की जानकारी लगातार भगवान तक पहुँचती रहती है...”

“लेकिन मैंने भगवान का क्या बिगाड़ा था? वे मुझसे मेरे अरेबा-परेबा क्यों छीन ले गए...?” यह मेरा सवाल था।

“भगवान ने नहीं, देवताओं के बदमाश और शरारती बच्चों ने तुम्हारे खरगोशों को चुराया। भगवान ने जब उन्हें डाँटा होगा, तो उन्होंने उन्हें पत्थर बनाकर नीचे वापस गिरा दिया...!” अम्मा ने कहा, “अब चलो, थोड़ा-सा खा लो। सुबह की पूरियाँ, मीजा और सेवई मैंने बचा कर रखी हैं। अगर तुम खाओगे, तो मैं भी खा लूँगी।”

मैं हालाँकि रोता रहा। अरेबा-परेबा को दो पत्थरों के रूप में वापस पाकर भी मेरे भीतर का खालीपन भरा नहीं था। इस आकस्मिक वंचना और देवताओं के बदमाश बच्चों द्वारा किए गए अन्याय की पीड़ा बहुत गहरी थी।



भला उन नन्हें-नन्हें खरगोश के बच्चों की क्या गलती थी, जिन्हें अकारण पत्थर के बेजान, बेडौल ढेलों में बदल दिया गया था। न अब वे साँस ले सकते थे, न भूख लगने पर रूई के फाहे से दूध पी सकते थे। पत्थर बने हुए भीतर से वे कितने बेचैन होंगे। प्यास लगती होगी तो पत्थर बने वे कितना तड़पते होंगे।

अब तो बड़े होकर हजार मील दूर किसी जंगल, खेत की मेंड़ या किसी आँगन में उगी दूब को देख लेने का सपना भी वे नहीं पाल सकते थे।

अम्मा ने भी, दिनभर के बाद, मेरे साथ खाना खाया। वे मुझको बहुत अच्छी तरह समझती थीं। मेरे भीतर के दुख और खालीपन का उन्हें पूरा-पूरा पता था।

शायद इसीलिए खाना खाने के बाद उन्होंने मेरी ओर बहुत प्यार, करुणा, असहायता और उदासी के साथ देखते हुए कहा, “लेकिन मुझे पक्की उम्मीद है कि एक न एक दिन, जब देवताओं के वे लड़के या कोई दूसरा नेक देवता, इधर हमारे आँगन से होकर गुजरेगा तो वह इन दोनों पत्थर के ढेलों को वापस अरेबा-परेबा बनाकर जिंदा कर देगा...! भगवान के इतने दूत और जासूस धरती पर हैं, कोई न कोई तो इस अन्याय और तुम्हारे दुख के बारे में उन्हें बताएगा ही..! मुन्ना, तुम खुश रहना सीखो!” यह घटना कम से कम चालीस-बयालीस साल पहले की है। मैं कई-कई बार घंटों, घिनौची के नीचे रखे पत्थर के उन दोनों ढेलों को घूरता रहता। देवताओं से मन ही मन प्रार्थना करता हुआ कि वे उन्हें जंगली खरगोश के बच्चों में वापस बदल दें।

कई-कई बार मुझे भ्रम होने लगता कि वे दोनों भूरे-कत्थई ढेले धीरे-धीरे हिल-डुल रहे हैं। मैं उनके निकट जाकर उन्हें टकटकी बाँधकर घूरता। मुझे बिल्कुल लगता कि वे साँस ले रहे हैं। उनका पत्थर का शरीर धीरे-धीरे काँप रहा है।

एक बार तो मुझे पूरा यकीन हो गया कि उनमें से बड़ा वाला अरेबा, जो ज्यादा सुस्त और काहिल था, वह सचमुच जिंदा हो रहा है। मैं भागता हुआ गया और कटोरे में थोड़ा-सा गाय का दूध लाकर उसके मुँह से लगा दिया।

आप विश्वास करें, पत्थर का अरेबा, कटोरे का सारा दूध पी गया। उसके दोबारा जीवित हो जाने की खुशी और उत्तेजना में मेरे आँसू निकलने लगे।

लेकिन मेरी बहुत प्रतीक्षा और गिड़गिड़ाने के बावजूद अरेबा वैसा का वैसा ही रहा। शायद दूध पीने से उसका पेट भर गया था और वापस मेरी दुनिया में लौटने के बारे में उसकी रुचि समाप्त हो चुकी थी। वह पत्थर बना ही खुश था।



इस घटना के चार-पाँच साल बाद अम्मा मर गई थीं। उन्हें कैंसर हो गया था। उनकी श्वसन नली गल गई थी और अंत में वे बोल नहीं पाती थीं।

कई-कई बार एक गहरा अपराध बोध मुझे होने लगता है। कहीं मेरी ज़िद और गुस्से से हारकर अम्मा ने उस रात की जो बात मुझे बता दी और जिसका पाप उन्होंने अपने ऊपर सिर्फ़ इस कारण ले लिया कि मैं खाना नहीं खा रहा था और मेरे शरीर से दो चिड़ियों के बराबर मांस कम हो गया था, कहीं देवताओं ने उसी का दंड तो उन्हें नहीं दे दिया। देवता कोई आदमी तो होते नहीं कि उनके भीतर कोई दया माया हो।

मैं हूँ ही ऐसा। अपनी ज़िद और अपने गुस्से में मैं अँधा हो जाता हूँ।

लेकिन उन देवताओं को भी तो स्वर्ग में रहने का कोई हक नहीं है, जो खरगोश के नन्हें-कोमल छौनों को इस तरह पत्थर के ढेले में बदल देते हैं। और किसी माँ को एक छोटी-सी बात बता देने पर उसकी साँस लेने वाली नली गला देते हैं।

कितना अभागा हूँ मैं। मैंने सेमलिया के दिए हुए जंगली खरगोश के दोनों बच्चों, अरेबा-परेबा को ही नहीं, अपनी माँ को भी खो डाला, जो दुनिया में सबसे अच्छी थी।

अब मैं बूढ़ा हो रहा हूँ। लेकिन हमारे गाँव के घर के आँगन में अम्मा के रखे हुए वे दोनों पत्थर अभी भी मौजूद हैं।

मैं अब-तब की तरह छह-सात साल का नहीं हूँ। अब यह मैं अच्छी तरह से जानता हूँ कि उस रात वास्तव में क्या हुआ होगा।

दरअसल, परछी और भंडार की दीवार की संघ में अम्मा का बनाया घर उतना सुरक्षित कभी नहीं था। तार की जाली का दरवाज़ा जो इधर-उधर की दीवार पर, अँधेरे में किसी तरह ठोकी गई दो कीलों पर टिका था, वह एक मामूली झटके में गिर जाने वाला था। कीलों समेत!

उस रात जब मैं सो गया था और अम्मा अपनी माँ यानी नानी का गीत गा रही थी, उसी वक्त वह बनैला, हिंसक और आवारा वन-बिलाड़, जिसे हम बग्घ कहते थे और जो अपने ही बच्चों का गला काट डालता था, वहाँ आया होगा।

उसे खरगोश के छौनों के नरम, भूरे-कथई रोयों से उठती गंध मिल गई होगी।

हो सकता है वह तभी से अँधेरे में घात लगाए बैठा रहा हो, जब मैं उन दोनों को रूई के फाहे से दूध पिला रहा था।



उसकी आहट से चौंककर अम्माँ किसी तरह अँधेरे में रास्ता टटोलते हुए वहाँ तक पहुँची होगी, क्योंकि रात में मिट्टी का तेल बचाने के लिए वे हमेशा लालटेन बुझा देती थीं। तब तक बगध ने अरेबा-परेबा को काट डाला होगा।

वे थे भी कितने छोटे और कोमल। कत्थई-भूरी रूई की दो नर्हीं गठरियों की तरह।

जैसा मैं था, अम्मा यह अच्छी तरह जानती थीं कि मैं उस हादसे को सह नहीं पाऊँगा। उन्होंने सबसे ज़्यादा अपने आप को अपराधी माना होगा। उन्होंने सोचा होगा कि अगर वे लालटेन ले लेती और रोशनी में कीले ठोकी होतीं, तो तार की जाली का फाटक इतना कमज़ोर न होता। दरअसल कीलें दीवारों में धंसी ही नहीं थीं, इसीलिए सुबह जब मैंने देखा तो उनके निशान मुझे नहीं दिखे थे। निश्चित ही वे इस हादसे के लिए अपने आपको जिम्मेदार मानती रही होंगी। अम्माँ ने इसीलिए उस रात वह सब किया, जो मैं अपने अनुमान के आधार पर, आज चालीस-बयालीस साल बाद आपको बता रहा हूँ।

अम्मा उस रात वहाँ पहुँचकर स्तब्ध रह गई होंगी। अपनी समझ से उन्होंने अरेबा-परेबा के लिए हर तरह से एक सुरक्षित और अभेद्य घर बनाया था।

फिर उन्होंने अरेबा-परेबा के मृत शरीर को उठाया होगा और उन्होंने घर के पिछवाड़े, जिधर नदी बहती है, वहाँ कहीं गड्ढा खोदकर उन्हें दबाया होगा। गड्ढा खोदने के लिए उन्हें भंडार घर में रखा सब्बल, उस अँधेरे में खोजकर निकालना पड़ा होगा। क्योंकि तेल बचाने के लिए लालटेन वे खुद सोने के पहले बुझा देती थी।

इसके बाद उन्होंने घर के पिछवाड़े ही कहीं, अरेबा-परेबा के घर में डाले गए रज़ाई के टुकड़ों और मेरी पुरानी कमीज़ को जलाया होगा। अगर मैं उस दिन ज़िद और गुम्से में भरकर अपने आपको कमरे में बंद न कर लेता, बल्कि अरेबा-परेबा की खोज में बाहर निकल जाता, तो उन कपड़ों के जलने का सुबूत मैं वहाँ पा सकता था। मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि यहाँ कहीं न कहीं राख ज़रूर रही होगी।

इसके बाद अम्मा ने धीरे-धीरे अरेबा-परेबा के होने के सारे निशानों को मिटाया होगा। उन्हें यह पूरा भरोसा रहा होगा कि अगली सुबह वे मेरे भीतर यह भ्रम पैदा करने में सफल हो जाएँगी कि वह सब कुछ पिछली रात का एक सपना था और कुछ नहीं।



वे थे भी कितने छोटे और कोमल। कत्थई-भूरी रूई की दो नन्हीं गठरियों की तरह। जैसे मैं था, भरोसा रहा होगा कि वे मुझे इस भ्रम या दुविधा में डालने में कामयाब हो जाएँगी कि मैंने वह सब कुछ नींद में ही देखा था और उसे सच समझ बैठा था।

लेकिन अम्मा आँगन से काँसे का कटोरा और रूई का फाहा हटाना भूल गई। यही सबसे बड़ी चूक, उस रात, उनसे हुई। और उन्हें उस गंध का पता ही नहीं था, जो अरेबा-परेबा के कारण खुद मेरे शरीर और कपड़ों से उठने लगी थी।

...और उन्होंने खुद सोच-समझकर एक कहानी गढ़ी होगी।... और वहाँ उन्होंने दो ऐसे पत्थरों को अंततः खोज निकाला होगा, जो जंगली खरगोश के बच्चों जैसे हों। माँ ने उन दोनों पत्थर के ढेलों को आँगन के दक्षिणी तरफ़, घिनौची के नीचे लाकर रखा होगा।

इस पूरे समय के दौरान वे अपने भीतर-भीतर वह कहानी बुनती रही होंगी। वे अच्छी तरह से जानती थीं कि मैं उनसे बहुत प्यार करता था और अगर दुनिया में किसी पर सबसे ज़्यादा विश्वास करता था तो वे खुद थीं— अम्मा।

इसके बाद वे मेरे कमरे में आई होंगी और मुझे वह कहानी सुनाई होगी।

लेकिन यह तथ्य आप बिल्कुल मत भूलिए, और मैं भी इसे कभी, बहुत सारी कोशिशों के बावजूद नहीं भूल पाता कि इतना सब करते हुए अम्माँ लगातार भूखी और प्यासी थीं।

वे रातभर सो भी नहीं सकी थीं, क्योंकि सुबह, उठते ही, उन्हें बाबूजी के व्रत के निवारण के लिए पूरियाँ, बेसन का स्वादिष्ट मीजा और गाढ़े दूध की सेवई बनानी थी।

और इतना सब करने के बावजूद वे अब तक इसीलिए भूखी थीं कि मैं भूखा था।

अम्मा अब नहीं हैं। लेकिन उनके लाए गए दोनों पत्थर अब भी हमारे आँगन में मौजूद हैं और यह सच है कि कहानी लिखना मैंने किसी और से नहीं, अम्मा से ही सीखा है। लेकिन हमेशा की तरह अब मैं आप सबको वह घटना बता रहा हूँ, जिसके बिना कोई भी कहानी कभी पूरी नहीं होती। एक ऐसी घटना, जिस पर मुझे स्वयं भी आश्चर्य होता है।



सन् 2001 की मई के महीने की यह घटना है।

उस रात मैं अपने घर के आँगन में अपनी खाट पर लेटा हुआ था। घर के सारे लोग सो चुके थे। ऊपर आकाश खूब गहरा, स्याह-नीला और बिल्कुल निरभ्र था— बिल्कुल साफ़। सृष्टि के पहले, स्वच्छ, नवजात आकाश की तरह।

...और असंख्य नक्षत्र, ग्रह और उपग्रह उस आकाश के समूचे विस्तार में अनगिनत तारों की तरह दूर-दूर तक टिमटिमा रहे थे।

ऐसा आकाश आप शहर के लोगों के पास नहीं होता।

संभवतः चतुर्दशी का चंद्रमा था। लगभग पूरा होता हुआ। उसका ठंडा, शांत, पीला और महीन उजाला हर तरफ़ फैल रहा था।

हमारा आँगन चंद्रमा की उस पीतल के रवै जैसी हल्दिया धूल से ढंक गया था। और तभी मैंने देखा।

मैंने अपनी आँखें मलीं। मैं जाग रहा था।

मैंने साफ़-साफ़ देखा, धिनौची के नीचे रखे वे दोनों पत्थर हिलने-डुलने लगे।

फिर मैंने देखा, वे दोनों पत्थर के ढेले आँगन के यहाँ-वहाँ उगी दूर के बीच पहले रेंगने और फिर कुछ पलों बाद, दौड़ने लगे।

निश्चित ही वे दोनों अरेबा-परेबा ही थे।

उन्हें देवताओं ने वापस जीवित कर दिया था। वे आँगन में खेल रहे थे— निर्भया कत्थई-भूरी रूई की दो नन्हीं-नन्हीं गठरियाँ।

...और उनके रोयों से उठने वाला वह अजब चिरायध जंगली गंध। वह गंध चारों ओर फैल रही थी। समूचे आँगन में, चंद्रमा के शीतल उजाले में घुलकर मेरी साँस के साथ मेरे भीतर तक उतरती हुई।

मैं डर गया। कहीं बघ आ गया तो?

अब तो अम्मा भी नहीं हैं, जो उन दोनों छौनों की हत्या के बाद, उनकी जगह पर पत्थर रख दें। और अब तो बघों की संख्या भी बहुत ज्यादा हो चुकी है। वे अकेले नहीं, अब तो झुंड और गिरोहों में रहते हैं। मैंने उन्हें बड़ी-बड़ी इमारतों के भीतर,



कुर्सियों पर भी बैठे देखा है। संसार का हर कोमल, पवित्र, निःकवच और सुंदर जीवन इस समय गहरे खतरे के बीच है।

आप गौर से देखें, हमारे समय की हर दीवार पर खून के छींटे हैं।

आप स्वयं बताइए, क्या मेरे डर का कोई आधार नहीं है।

आप यह भी बताइए कि क्या आप इसी तरह चुप देखते रहेंगे और बग़्घे वारदात करते रहेंगे?

संवाद

1. “मुझे यह भी लगता जैसे मैं उनकी माँ हूँ” रचनाकार ने यह बात क्यों और किस संदर्भ में कही?
2. वास्तव में अरेबा-परेबा के साथ क्या हुआ होगा?





बाज़ार में रामधन

कैलाश बनवासी

कैलाश बनवासी की यह कहानी पशु से मनुष्य के गहरे आत्मीय संबंध की कहानी है। रामधन के पढ़े-लिखे भाई मुन्ना को रोजगार के लिए पैसे की ज़रूरत है। बैल बेचने की उसकी जिद से मज़बूर होकर रामधन बैलों को लेकर बाज़ार जाता है। लेकिन बैलों को बेच नहीं पाता है। इस कहानी में बैलों से रामधन के आत्मीय लगाव को बहुत वास्तविक ढंग से दिखाया गया है।

यह बालोद का बुधवारी बाज़ार है।

बालोद इस ज़िले की एक तहसील है। कुछ साल पहले तक यह सिर्फ़ एक छोटा-सा गाँव हुआ करता था— जहाँ किसान थे, उनके खेत थे, हल-बक़र थे, उनके



गाय-बैल थे, कुएँ और तालाब थे, उनके बरगद, नीम और पीपल थे। पर अब यह एक छोटा शहर है— शहर की सारी खूबियाँ लिए हुए। आस-पास के गाँव-देहातों को शहर का सुख और स्वाद देने वाला। इसी बालोद के हफ़्तावार भरने वाले बुधवारी बाज़ार की बात है। रामधन अपने एक जोड़ी बैल लेकर यहाँ बेचने पहुँचा था।

बाज़ार अभी भरना बस शुरू ही हुआ था। जैसे भी ढाई-तीन बजे धूप में खरीदारी करने कौन निकलता है? इसके बावजूद यहाँ चारों तरफ़ रंगीनी और रौनक है। पता नहीं क्या बात है, रामधन जब भी यहाँ आता है, बाज़ार और शहर की रौनक को बढ़ा हुआ ही पाया है।

अपने बैलों को लेकर वह उधर बढ़ गया जहाँ गाय-बैलों का बाज़ार भरता है। बैलों का यह कोई कम बड़ा बाज़ार नहीं है। बैलों का पूरा हुजूम मौजूद है। दो-ढाई सौ से भला क्या कम होंगे!

रामधन के चेहरे-मोहरे, उसकी चीकट बण्डी और मटमैली धोती, जिसका मटमैला रंग किसी साबुन पानी से नहीं धुलता, देखकर कोई भी सहज जान सकता है कि वह किस स्तर का आदमी है। रामधन के बारे में कुछ मोटी-मोटी जानकारी दे देना मैं उचित समझता हूँ। उमर होगी उसकी लगभग बत्तीस साल की। संपत्ति के नाम पर दो एकड़ खेत हैं, दो बैल और एक टूटा-फूटा पुरखौती कच्चा मकान। परिवार में बुढ़िया माँ है, पत्नी, दो बच्चे और एक छोटा भाई है— मुन्ना रामधन चौथी कक्षा तक ही पढ़ा हुआ है लेकिन मुन्ना को बारहवीं पास किए हुए दो साल गुज़र चुके हैं। रामधन ने अपने छोटे भाई को कॉलेज नहीं पढ़ाया। कुछ तो इसीलिए कि उनके सरीखे लोगों के पढ़ने-लिखने से कुछ होता हवाता नहीं। दूसरी बात और असल बात— वही घर की आर्थिक तंगी। जैसे यह शब्द में जानबूझकर प्रयोग नहीं करना चाहता था, लेकिन मुझे लगता है, यह एक बेहद गंभीर और संवेदनशील शब्द है। मुझे यह भी लगता है कि दुनियाभर के वक्ताओं ने घसीट-घसीटकर दूसरे तमाम बड़े और महान शब्दों की तरह इसे भी ठस्स और निर्जीव बना डाला है। इसे लिखते हुए मुझे इस बात का डर है कि समाचारों में रोज़ सुने जाने वाले शब्दों की तरह सस्ता और अर्थहीन न रह जाए।

खैर! तो रामधन और उसकी पत्नी मेहनत-मजूरी करके ही अपना पेट पाल सकते हैं और पाल रहे हैं। लेकिन मुन्ना क्या करे? वह तो यहाँ गाँव का पढ़ा-लिखा



नौजवान है, जिसे स्कूली भाषा में कहें तो देश को आगे बढ़ानेवालों में से एक है। वह पिछले दो सालों से नौकरी करने के या खोजने के नाम पर इधर-उधर घूम रहा है। परंतु अब वह इनसे भी ऊब चुका है और कोई छोटा-मोटा धंधा करने का इच्छुक है। लेकिन धंधा करने के लिए पैसा चाहिए। और पैसा?

“भइया, बैलों को बेच दो!”

मुन्ना ने यह बात किसी खलनायक वाले अंदाज़ में नहीं कहीं थी। उसने जैसे सोच-समझकर कहा था। इसके बावजूद रामधन को गुस्सा आ गया, “ये क्या कह रहा है तू?”

“ठीक ही तो कह रहा हूँ मैं! बेच दो इनको। मैं धंधा करूँगा!”

रामधन को एक गहरा धक्का लगा था— अब यह भी मुँह उठाकर बोलना सीख गया है मुझसे। लेकिन इससे भी ज़्यादा दुख इस बात का हुआ कि मुन्ना उसे बेचने को कह रहा है जो उनकी खेती का आधार है। रामधन ने बात गुस्से में टाल दी, “अगर कुछ बनना है, कुछ करना है तो पहले उतना कमाओ! इसके लिए घर की चीज़ क्यों खराब करता है? पहले कमा, इसके बाद बात करना! हम तेरे लिए घर की चीज़ नहीं बेचेंगे। समझे?”

लेकिन बात वहीं खत्म नहीं हुई। झंझट था कि दिन-पर-दिन बढ़ता जा रहा था।

“आखिर ये दिनभर यहाँ बेकार में बँधे ही तो रहते हैं। खेती-किसानी के दिन छोड़कर और कब काम आते हैं? यहाँ खा-खाकर मुटा रहे हैं ये!” मुन्ना अपने तर्क रखता।

“अच्छा, तो हमारा काम कैसे चलेगा?”

“अरे, यहाँ तो कितने ही ट्रैक्टर वाले हैं, उसे किराए से ले आएँगे। खेत जुतवाओ, मिंजवाओ और किराया देकर छुट्टी पाओ!”

“वाह! इसके लिए तो जैसे पइसा-कौड़ी नहीं लगेगा? दाऊ क्या हमारा ससुर है जो फोकट में ट्रैक्टर दे देगा?”

“लगेगा क्यों नहीं? क्या इनकी देखभाल में खरचा नहीं लगता?”

“लगता है, मगर तेरे ट्रैक्टर से कम समझे? बात तो ट्रैक्टर की कर रहा है तू, मालूम भी है उसका किराया?”



“मालूम है इसीलिए तो कह रहा हूँ। यहाँ जब बैल बीमार पड़ते हैं तो कितना ही रुपया उनके इलाज-पानी में चला जाता है, तुम इसका हिसाब किए हो?”

पैसा अलग और झंझट अलग!”

“मगर किसी की बीमारी को कौन मानता है?”

“तभी तो मैं कहता हूँ, बेचो और सुभीता पाओ!”

बातचीत हर बार अपनी पिछली सीमा लाँघ रही थी। कहने को तो मुन्ना यहाँ तक कह गया था कि इन बैलों पर सिर्फ़ तुम्हारा ही नहीं, मेरा भी हक है।

इस बात ने लाजवाब कर दिया था रामधन को। और अवाक! कभी नहीं सोचा था। उसने कि मुन्ना उसके जैसे सीधे-सादे आदमी से हक की बात करेगा। मुन्ना को क्या लगता है, मैं उसका हिस्सा हड़पने के लिए तैयार बैठा हूँ? रामधन खूब रोया था इस बात पर... अकेले में।

बैल उसके पिता के खरीदे हुए हैं, यह बात सच है। जाने किस गाँव से भागकर इस गाँव में आ गए थे बैल, तब ये बछड़े ही थे और साथ में बँधे हुए थे। किसी ने पकड़कर काँजी हाउस के हवाले कर दिया था उन्हें नियम के मुताबिक कुछ दिनों तक उनके मालिक का रास्ता देखा गया ताकि जुर्माना लेकर छोड़ सकें। लेकिन जब इंतज़ार करते-करते ऊब गए और कोई उन्हें छुड़ाने नहीं पहुँचा तो सरपंच ने इनकी नीलामी करने का फ़ैसला किया था। यह संयोग ही था कि रामधन के बाप के हाथ में कुछ रुपये थे और सनकी तो वह था ही। जाने क्या जी में आया जो दोनों बछड़े वहाँ से खरीद लाया। तब से ये घर में बँध गए और रामधन की निगरानी में पलने लगे। खेत जोतना, बैलगाड़ी में फाँदना, उनसे काम लेना और उनके दाना-भूसा का ख्याल रखना, उनको नहलाना धुलाना और उनके बीमार पड़ने पर इलाज के लिए दौड़-भाग करना-सब रामधन का काम था। तबसे ये बैल रामधन से जुड़े हुए हैं। इनके जुड़ने के बाद रामधन इतना ज़रूर जान गया कि भले ही बेचारों के पास बोलने के लिए मुँह और भाषा नहीं है, लेकिन अपने मालिक के लिए भरपूर दया-मया रखते हैं। इनकी गहरी काली तरल आँखों को देखकर रामधन को यह भी लगता है, ये हमारे सुख-दुख को खूब अच्छी तरह समझते हैं, बिल्कुल अपने किसी सगे की तरह। तभी तो वह उन्हें इतना चाहता है। इतना लगाव रखता है।



इन्हें बेचने की बात उठी, तबसे ही उसे लग रहा है, जैसे उसकी सारी ताकत जाने लगी है।

रामधन मुन्ना को समझा नहीं पा रहा था। वह समझा भी नहीं सकता था। अब कैसे समझाता इस बात को कि बैल हमारे घर की इज्जत है... घर की शोभा है। और इससे बढ़कर हमारे पिता की धरोहर है। उस किसान का भी कोई मान है समाज में, जिसके घर एक जोड़ी बैल नहीं है! कैसे समझाता कि हमारे साथ रहते-रहते ये भी घर के सदस्य हो गए हैं। जो भी रूखा-सूखा, पेज-पसिया मिलता है, उसी में खुश रहते हैं। वह मुन्ना से कहना चाहता था, तुमको इनका बेकार बँधा रहना दिखता है मगर इनकी सेवा नहीं दिखती? इनकी दया-मया नहीं दिखती?

और सचमुच मुन्ना को कुछ दिखाई नहीं देता। उसके सिर पर तो जैसे भूत सवार है धंधा करने का। रोज़-रोज़ की झिंक-झिंक से उसकी पत्नी भी तंग आ चुकी है। रोज़ के झंझट से तो अच्छा है कि चुपचाप बेच दो। न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी!

मुन्ना कहने लगा है— अगर तुम नहीं बेच सकते तो मुझसे कहो। मैं बेच दूँगा उन्हें बढ़िया दाम में!

... बाज़ार की भीड़ अब बढ़ रही है। चारों तरफ़ शोरगुल और भीड़भाड़। यहाँ की रौनक देखकर रामधन को महादेव घाट के मेले की याद आ गयी। हर साल माघी पुन्नी के दिन भरने वाला मेला। वहाँ भी ऐसी ही भीड़ और रौनक होती है। पिछले साल ही तो गया था उसका परिवार। और पास-पड़ोस के लोग भी गये थे— जितने उसकी बैलगाड़ी में समा जाएँ। सब चलो! पूरी रातभर का सफ़र था और जाड़े की रात। फिर भी मेले के नाम पर इतना उत्साह कि सब अपना कथरी-कम्बल सँभाले आ गए थे। रामधन को आज भी वह रात याद है— अँजोरी रात का उजाला इतना था कि हर चीज़ चाँदनी में नहा-नहा गई थी— खेत, मेंड़, नहर, पेड़, तालाब... जैसे दिन की ही बात हो।

उनके हँसने-खिलखिलाने से जैसे बैलों को भी इसका पता चल गया था। रातभर पूरे उत्साह और आनंद से दौड़ते रहे... खन् खन् खन् खन्...!

.... गाय-बैलों का एक मेला-सा लग गया है यहाँ हर किस्म के बैल काले-सफ़ेद, लाल, भूरे और चितकबरे और अलग-अलग काठी के बैल-नाटे, दुबले, मोटे....।



ग्राहकों की आवाजाही और पूछताछ शुरू हो चुकी है। बैलों के बाज़ार में धोती-पटका वाले किसान हैं। सौदेबाजी चल रही है।

रामधन के बैलों को भुलऊ महाराज परख रहे हैं। आस-पास के गाँवों में उनकी पण्डिताई खूब जमी है। चाहे ब्याह करना हो, सत्यनारायण की कथा कराना हो, मरनी-हरनी पर गरुड़ पुराण बाँचना हो— सब भुलऊ महाराज ही करते हैं। कुछ साल पहले तक तो कुछ नहीं था इनके पास। अब पुरोहिती जम गई तो सब कुछ हो गया। खेती बाड़ी भी जमा चुके हैं अच्छी-खासी।

महाराज बैलों के पुट्टों को ठीक तरह से ठोंक बजाकर देखने के बाद बोले, “अच्छा रामधन, ज़रा इनको रेंगाकर दिखाओ। चाल देख लूँ।”

रामधन ने कहा, “अरे, देख लो महाराज... तुमको जैसे देखना है, देख लो! हम कोई परदेसी हैं जो तुम्हारे संग धोखाधड़ी करेंगे।”

रामधन ने बैलों को कोंचकर हकाला, “हो...रे...रे... च्वल!” दोनों बैल आठ-दस डग चले फिर वापस अपनी जगह पर।

भुलऊ महाराज बगुला भगत बने बड़े मनोयोग से बैलों का चलना देख रहे थे— कहीं कोई खोट तो नहीं है! कहने लगे, “देखो भइया, मैं तो कुछ भी चीज़ लेता हूँ तो जाँच-परखकर लेता हूँ।”

“देखो न महाराज, रोकता कौन है? न मैं कहीं भाग रहा हूँ न मेरे बैल। अच्छे से देख लो। धोखाधड़ी की कोई बात नहीं है। फिर बाम्हन को दगा देकर हमको नरक में जाना है क्या?”

भुलऊ महाराज के चेहरे से लगा, रामधन के उत्तर से संतुष्ट हुए। बोले, “अच्छा, अब ज़रा इनका मुँह खोलकर दिखाओ। मैं इनके दाँत गिनूँगा।”

“अभी लो। ये कौन बड़ी बात है।” रामधन ने अपने बैलों के मुँह खोल दिए। भुलऊ महाराज अपनी धोती कुरता सँभालते हुए नज़दीक आए और बैलों के दाँत गिनने लगे।

दाँत गिनते हुए महाराज ने पूछा, “तुम्हारे बैल कोढ़िया तो नहीं हैं?”

“तुम भी अच्छी बात करते हो महाराज! विश्वास नहीं है तो गाँव में पुछवा लो पाँच-परगटा। सब पंच गवाही देंगे।”



“ठीक है भाई, ठीक है। मान लिया। अब तुम कहते हो तो मान लेते हैं।” महाराज व्यर्थ ही हँसे, फिर अपने बंद छाते की नोक को कसकर ज़मीन में धाँसा मानो अब सौदे की बात हो जाए। महाराज ने अपने को थोड़ा खाँस-खाँखारकर व्यवस्थित किया, फिर पूछा, “तो बताना भाई, कितने में दोगे?”

रामधन विनम्र हो गया, “मैं तो पहले ही बता चुका हूँ मालिक...।” नाराज़गी से भुलक महाराज का चंदन और रोली का तिलक लगा माथा सिकुड़ गया, “फिर वही बात! वाजिब दाम लगाओ, रामधन।”

“बिल्कुल वाजिब लगा रहा हूँ महाराज। भला आपसे क्या फायदा लेना।” रामधन ने उसी नम्रता से कहा।

महाराज खीझकर बोले, “क्या यार रामधन! जान-पहचान के आदमी से तो कुछ कम करो। आखिर एक गाँव-घर के होने का कोई मतलब है कि नहीं? आँय!”

रामधन का जी हुआ कह दे, “तुम तो लगन पढ़ने के बाद एक पाई कम नहीं करते। आधा-अधूरा बिहाव छोड़कर जाने की धमकी देते हो अगर दक्षिणा तनिक भी कम हो जाए। गाँव-घर जब तुम नहीं देखते तो भला मैं क्यों देखूँ?” लेकिन लगा इससे बात बिगड़ जाएगी उसने सिर्फ़ इतना ही कहा, “नहीं पड़ेगा महाराज, मेरी बात मानो। अगर पड़ता तो मैं दे नहीं देता।”

भुलऊ महाराज अब बुरी तरह बमक गए और गुस्से से उनके पतले लंबूतरे चेहरे की नरम झुर्रियाँ लहरा उठीं, “एक तुम्हीं हो जैसे दुनिया में बैल बेचने वाले? बाकी ये सब तो मुँह देखने वाले हैं। इतना गुमान ठीक नहीं है, रामधन!”

महाराज की तेज़ आवाज़ से आस-पास के लोगों का ध्यान इधर ही खिंच गया। रामधन ने इस समय गजब की शांति से काम लिया, “मैं कब कह रहा हूँ महाराज। तुमको नहीं पोसाता तो इन खरीदो, दूसरा देख लो। यहाँ तो कमी नहीं है जानवरों की।” इतना तो रामधन भी जानता था कि ग्राहक भले ही गुस्सा हो जाए, बेचने वाले को शांत रहना चाहिए।

महाराज गुस्से से थरथराते खड़े रहे। कुछ लोग आस-पास घेरा बनाकर जमा हो गए, गोया कोई तमाशा हो रहा हो।



इधर-उधर घूमकर सहदेव फिर वापस आकर खड़ा हो गया था और सारा माजरा देखता रहा था चुपचापा बोला, “देखो रामधन, तुमको पोसा रहा है तो बोलो, मैं अभी खड़े-खड़े खरीद लेता हूँ।”

रामधन जानता है सहदेव को। यह गाँव-गाँव के बाज़ार-बाज़ार घूमकर गाय-बैलों की खरीदारी में दलाली करता है। खरीदार के लिए विक्रेता को पटाता है और विक्रेता के लिए ग्राहक। ये बैल के पारखी होते हैं। सहदेव कुथरेल गाँव के भुनेश्वर दाऊ के लिए दलाली कर रहा है।

रामधन अपने बैलों की तरफ़ पुआल बढ़ाता हुआ बोला, “नहीं भाई, इतने कम में नहीं पोसाता सहदेव।”

रामधन का वही सधा हुआ और ठहरा हुआ टका-सा जवाब सुनकर जैसे महाराज की देह में आग लग गई “देख... देख... इसको कैसा जवाब देता है? मैं कहता हूँ, अरे, कैसे नहीं पोसाएगा यार? सब पोसाएगा! देख सब जगो सौदा पट रहा है...।”

झल्लाहट में महाराज के कत्था से बुरी तरह रचे काले भूरे दाँत झलक गए।

“मैं तो कह रहा हूँ महाराज। हाथ जोड़कर कह रहा हूँ।” रामधन ने सचमुच हाथ जोड़ लिए। “आप वहीं खरीद लो!”

अब सहदेव भी बिदक गया, हालाँकि वह शांत स्वभाव का आदमी है। बोला, “ज़्यादा नखरा झन मार! तेरे बैल बढ़िया दाम में बिक जाएँगे। देख, तेरे बैल खरीदने भुनेसर दाऊ खुद आए हैं।”

रामधन ने कुथरेल के भुनेश्वर दाऊ को देखा, जो सामने खड़े थे, सौदेबाजी देखते। अधेड़ दाऊ की आँखों में धूप का रंगीन चश्मा है, सुनहरी फ्रेम का वे बड़े इत्मीनान और बेहद सलीके से खड़े हैं। भुलऊ महाराज की तरह गँवारूपन के साथ नहीं।

रामधन को बहुत असहज लग रहा था... इस भीड़ के केंद्र में वही है। और ऐसा बहुत कम हुआ है। सब पीछे पड़े हैं। एक क्षण को गर्व भी हुआ उसे अपने बैलों पर। उसने बैलों को पुचकार दिया और बैलों की गले की घंटियाँ टुनटुना उठीं।

अब दाऊ ने अपना मुँह खोला, “देखो भाई, मुझको तो हल-बैल का कुछ नहीं मालूम। मैं तो नौकरों के भरोसे खेती करने वाला आदमी हूँ। बस, हमको बैल बढ़िया चाहिए— खूब कमाने वाला, कोढ़िया नहीं होना चाहिए बैल...।”



रामधन ने अपने बैलों को दुलारा, “शक-सुबो की कोई बात नहीं है दाऊ मैं अपने मुँह से इनके बारे में क्या कहूँ, गाँव के किसी भी आदमी से पूछ लो, वो बता देगा आपको। आप चाहो तो इनको दिनभर दौड़ा लो, पानी छोड़कर कुछ और नहीं चाहिए इनको।”

वहाँ खड़े-खड़े भुलऊ महाराज का धैर्य और संयम अब चुकने लगा था। बोले, “तीन हजार दो सौ दे रहा हूँ! नगद! और कितना दूंगा?...दो-टके के बैल!... आदमी और कितना देगा?”

रामधन अटल है, “नहीं पड़ेगा महाराज! चार हजार माने चार हजार!” अब महाराज के चेहरे पर गुस्सा, क्षोभ, तिलमिलाहट और पराजय का भाव देखने लायक था। लगता था भीतर ही भीतर क्रोध से दहक रहे हों और उनका बस चले तो रामधन को भस्म करके रख दें।

अब सहदेव ने कहा, “देखो भाई, तुमको तुम्हारी आमदनी मिल जाए, तुमको और क्या चाहिए फिर?”

“अरे आमदनी की ऐसी की तैसी! मेरा तो मुद्दस नहीं निकलता मेरे बापा।” रामधन भी चिल्ला उठा।

भुलऊ महाराज को इस बीच जैसे फिर मौका मिल गया। अपना क्रोध निगलकर बोले, “ले यार, मैं नगद दे रहा हूँ तीन हजार तीन सौ! एक सौ और ले लो। ले चला तुम्हीं खुश रहो। चल अब किस्सा खतम कर...।” भुलऊ महाराज अपनी रौ में रस्सी पकड़कर बैलों को खींचने लगे, जबरदस्ती...।

महाराज की इस हरकत पर जमा लोग हँस पड़े। सहदेव तो ठठाकर हँस पड़ा, “महाराज, ये दान-पुन का काम नहीं है। मैं इनके भाव जानता हूँ जितना तुम कह रहे हो उतने में तो कभी नहीं देगा! अरे घंटाभर पहले मैं साढ़े तीन हजार बोला था। एक घंटा तक इसके कुला में लेवना (मक्खन) लगाया। मुझको नहीं दिया तो तुमको कैसे दे देगा तीन हजार तीन सौ में?”

जमा लोग फिर हँस पड़े। भुलऊ महाराज अपमानित महसूस करके क्षण भर घूरते रहे। फिर गुस्से से अपना गड़ा हुआ छाता उठाया और चलते बने।

महाराज के खिसकते ही भीड़ के कुछ लोगों को लगा, अब मज़ा नहीं आएगा। सो कुछ सरकने को हुए। लेकिन अधिकांश अभी भी डटे हुए थे, किसी



नए ग्राहक और तमाशे की उम्मीद में, उन तगड़े सफ़ेद और भूरे बैलों को मुग्ध होकर निहारते हुए।

तभी भीड़ को चीरता हुआ चड़ता प्रकट हो गया। चड़ता इधर का जाना-माना दलाल है। विकट जिद्दी और सनकहा। अपने इस जिद्दी स्वभाव के भरोसे ही वह जीतता आया। ऐसे सौदे कराने की कला में वह माहिर माना जाता है। सौदेबाज़ी में सफलता के लिए वह साम-दाम-दंड-भेद, हर विधि अपना सकता है। वह सिर में लाल गमछा बाँधे हुए था। अधेड़, काला किंतु गठीले शरीर का मालिक चड़ता।

आते ही दाऊ को देखकर कहेगा, “राम-राम दाऊ, का बात है?” वह अपनी आदत के मुताबिक जल्दी-जल्दी बात कहता है।

दाऊ ने अपनी शिकायत चड़ता के सामने रखी, “अरे देख ना चड़ता, साढ़े तीन हजार दे रहा हूँ, तब भी नहीं मान रहा है।”

“तुम हटो तो सहदेव, मैं देखता हूँ।” सहदेव को एक किनारे करता हुआ चड़ता आगे बढ़ गया। उसने बैलों को देखा और उनके माथे को छूकर प्रणाम किया। और बोला, “ठीक है दाऊ। मैं पटा देता हूँ सौदा। अब चिंता की कोई बात नहीं है, मैं आ गया हूँ।”

रामधन ने कहना चाहा कि इतने में नहीं पोसाएगा। लेकिन चड़ता इससे बेखबर था। उसे जैसे रामधन के हाँ अथवा ना की कोई परवाह ही नहीं थी। वह अपनी रौ में इस समय सिर्फ़ दाऊ से मुखातिब था, “दाऊ... तुम दस रुपया दो... बयाना ... मैं सब बना लूँगा, तुम देखते भर रहो।”

दाऊ ने दूसरे ही पल अपने पर्स से सौ का एक नोट निकाल लिया, “अरे दस क्या लेते हो, सौ रखो।”

रुपये लेकर चड़ता अब रामधन की तरफ़ बढ़ा। उसे जबरदस्ती रुपया पकड़ाने लगा, “अच्छा भाई, चल जा। बैलों के पैर छू लो। ये बयाना रख और सौदा मंज़ूर कर...।”

“कितने में?” रामधन ने गहरे संशय से पूछा।

“साढ़े तीन हजार में।”

“ऊँ हूँ... नहीं जमेगा।” रामधन ने स्पष्ट कहा।



अब चड़ता अपने वास्तविक फार्म में उतर आया, ज़िद करने लगा, “अरे, रख मेरे भाई और मान जा।”

रामधन ने विनम्र होने की कोशिश की, “नहीं भाई, नहीं पोसाता। देख, मेरी बात मान और ज़िद छोड़... मैं तुम्हारे पैर पड़ता हूँ।”

लेकिन चड़ता भभक गया, “अरे कितने ही देखे हैं तेरे जैसे चल रख और बात खतम कर!” “नहीं नहीं। चार हजार से एक पाई कम नहीं।”

रामधन अपनी बात पर अटल था। रामधन को परेशानी में फँसा देखकर सहदेव बचाव के लिए आया और चड़ता को समझाने लगा, “चड़ता, जब उसको नहीं पोसाता तो कैसे दे देगा। कुछ समझा कर!”

“देगा ये देगा और तेरे सामने देगा। तुम देखते तो रहो।” चड़ता ने जमी हुई नज़रों से सहदेव को देखा। वह फिर अपनी ज़िद पर उतर आया, “ले रख यार और मान जा जा बैलों के पैर छू ले।” कोई प्रतिक्रिया रामधन के चेहरे पर नहीं देखकर वह फिर शुरू हो गया, “अच्छा, चल ठीक है! तुम मुझको एक पैसा भी दलाली मत देना। ये लो! तेरे बैलों की कसम! बस्स! एक पैसा मत देना मेरे! चल...।”

अब रामधन को भी गुस्सा आ गया, “मैं तुम्हारे को कितने बार समझाऊँगा, तुमको समझ नहीं आता क्या? नहीं माने नहीं। तू जा यार यहाँ से...जा...।”

लेकिन चड़ता भी पूरा बेशरम आदमी ठहरा। वह इतनी जल्दी हार मानने वाला नहीं था, “अच्छा, आखिर मुझको सौ-दो सौ रुपया देगा कि नहीं? आँय? मत देना मेरे को! मेरी बात मान, इससे बढ़िया रेट तेरे को और कोई नहीं देगा, माँ कसम धरती दाई की कसम! कोई नहीं देगा!” उसने ज़मीन की मुट्ठी भर धूल उठाकर माथे पर लगा ली।

लेकिन चड़ता के इतने हथियार आजमाने के बावजूद वह बेसर रहा। अपनी ज़िद पर कायम रहा— चार हजार बस्स...।

अब चड़ता ने हार मान ली। वह गुस्से में फुंफकारता और रामधन को अण्ड बण्ड बकता हुआ चला गया। और भीड़ में खो गया।

चड़ता के जाते ही भीड़ छँटने लगी। अब वहाँ किसी दूसरे तमाशे की उम्मीद नहीं रही, क्योंकि शाम धीरे-धीरे उतर रही थी। इस समय पश्चिम का सारा आकाश लालिमा से भर उठा था और सूरज दूर पेड़ों के झुरमुट के पीछे छुपने की तैयारी में था।



बाज़ार की चहल-पहल धीरे-धीरे कम हो रही थी। रामधन के पास तभी सहदेव आ गया।

फिर धीरे-धीरे कहने लगा, “ठीक किए रामधन। बिल्कुल ठीक किए। इन दाऊ लोगों को गाय-बैल की क्या कदर? दाऊ रहे चाहे कुछ रहे— अपने घर में होगा। हम आखिर बैल बेचने आए हैं, किसी बाम्हन को बलिया दान करने नहीं आए हैं। ठीक किया तुमने?”

सुनकर अच्छा लगा रामधन को उसने सहदेव से विदा माँगी, “अब जाता हूँ भइया, दूर का सफ़र है। गाँव पहुँचते तक रात-साँझ हो जाएगी। चलता हूँ” और अपने बैलों को लेकर चल पड़ा।

यह लगातार तीसरा मौका है जब रामधन हाट से अपने बैलों के साथ वापस लौट रहा है— उन्हें बिना बेचे। रामधन जानता है, गाँव वाले उसके इस उजबकपने पर फिर हँसेंगे। घर में पत्नी अलग चिड़चिड़ाएगी और मुन्ना फिर गुस्साएगा।

गाँव के लोगों को जब से इसका पता चला है, वे अक्सर उससे पूछ लेते हैं, “कैसे जी रामधन, तुम तो कल बैल लेकर हार गए थे, क्या हुआ? बैल बिके के नहीं?”

वे रामधन पर हँसते हैं, “अच्छा आदमी हो भाई तुम भी। इतने बड़े बाज़ार में तुमको एक भी मन का ग्राहक नहीं मिला!” कुछेक अनुमान लगाते हैं, शायद रामधन को बाज़ार की चाल-ढाल नहीं मालूम। उसे मोल-भाव करना नहीं आता। उसे अपना माल बेचना नहीं आता। या फिर साफ़ बात है रामधन को अपने बैल बेचने नहीं हैं।

प्रिय पाठको, अब आप यह दृश्य देखिए और सुनिए भी!

रामधन अपने बैलों की रस्सी थामे, चुपचाप लौट रहा है। पैदल। साँझ खूब गहरा चुकी है और अँधेरा चारों ओर घिर आया है। वह किसी गाँव के धूल अटे कच्चे रास्ते से गुज़र रहा है। जब आप ध्यान से देखेंगे तो पाएँगे, वे दो बैल और रामधन नहीं, बल्कि आपस के तीन गहरे साथी जा रहे हैं। हाँ, तीन गहरे साथी। बैलों के गले की घंटियाँ आस-पास की खामोशी को तोड़ती हुई, उनके चलने की लय में आराम से बज रही हैं— टुन टुन टुन टुन...। क्या आप सिर्फ़ यही सुन रहे हैं? तो फिर गलत सुन रहे हैं। आप ध्यान से सुनिए, वे आपस में बातें कर रहे हैं...। जी नहीं, मैं कोई कविता या किस्सा नहीं गढ़ रहा हूँ। आपको विश्वास नहीं हो रहा होगा। लेकिन आप मानिए,



इस समय सचमुच यही हो रहा है। यह तो समय-समय की बात है कि आपको यह कोई चमत्कार मालूम हो रहा है।

उसके बैल पूछ रहे हैं, “मान लो अगर दाऊ या महाराज तुम्हें चार हजार दे रहे होते तो तुम क्या हमें बेच दिए होते?”

रामधन ने जवाब दिया, “शायद नहीं। फिर भी नहीं बेचता उनके हाथ तुमको।”

“बेचना तो पड़ेगा एक दिन!” बैल कह रहे हैं, “आखिर तुम हमें कब तक बचाओगे, रामधन? कब तक?”

जवाब में रामधन मुस्करा दिया— एक बहुत फीकी और उदास मुस्कान... अनिश्चितता से भरी हुई। रामधन अपने बैलों से कह रहा है, “देखो... हो सकता है। अगली हाट में मुन्ना तुम्हें लेकर आए।”

संवाद

1. बैलों को बेचने की बात उठने पर रामधन को ऐसा क्यों लगता था कि जैसे उसकी सारी ताकत क्षीण हो गई है?
2. विकास की दौड़ में बैलों से हमारे संबंध क्यों टूटते चले गए हैं?





मूर्ति और मनुष्य

ऑस्कर वाइल्ड

‘मूर्ति और मनुष्य’, कहानी मनुष्य के दुख-दर्द के एहसास की कहानी है। राजकुमार मरने के बाद मूर्ति के रूप में संसार के कष्टों को देखकर दुखी है। गौरैया की मदद से वह पीड़ित लोगों की सेवा करता है। धनी वर्ग गरीबों की इस अवस्था से बेपरवाह है। अपने सुख-सुविधा में लीन है। यह कहानी हमें मानव जीवन के प्रति संवेदनशील बनाती है। ऑस्कर वाइल्ड की इस कहानी का अनुवाद धर्मवीर भारती ने ‘मूर्ति और मनुष्य’ शीर्षक से किया है।

नगर में उत्तर की ओर एक ऊँचे से स्तंभ पर सुखी राजकुमार की प्रतिमा स्थापित थी। मूर्ति पर हल्का स्वर्ण-पत्र मढ़ा था, आँखों के स्थान पर दो चमकदार नीलम थे और तलवार की मूठ में एक बड़ा-सा लाल जड़ा था।



लोग उस प्रतिमा के सौंदर्य की बड़ी प्रशंसा करते थे। एक नगर-समिति का सदस्य, जो अपने को कला का पारखी बतलाना चाहता था, कहता था, “यह प्रतिमा इतनी ही सुंदर है जितना दिशा-सूचक यंत्र।” फिर इस डर से कि लोग उसे अयथार्थ पलायनवादी न समझ लें यह फौरन कह देता था, “हाँ, है तो यह कलावस्तु, किंतु उतनी भी उपयोगी नहीं जितना दिशासूचक यंत्र।”

एक बुद्धिमती माँ अपने ज़िद्दी बच्चे को समझाती थी, “तुम भी राजकुमार की तरह क्यों नहीं बन जाते? भला उसकी प्रतिमा कभी किसी से चंद खिलौना माँगती है?”

“मुझे खुशी है कि कम-से-कम दुनिया में कोई तो सुखी और शांत है!”

मूर्ति की ओर देखकर एक निराश मनुष्य कहा करता था।

चर्च में पढ़ने वाले शिशु छात्र, लाल मखमली कोट और सफ़ेद धुले हुए रूमाल गले में पहनकर आते थे और उसे देखकर कहते थे, “वाह! यह तो देवदूत-सा लगता है।”

“तुम्हें कैसे मालूम कि देवदूत जैसा लगता है?” उनके गणित अध्यापक ने पूछा, “तुमने कभी देवदूत देखा है?”

“क्यों नहीं! रोज़ सपने में हमारी शय्या के पास देवदूत खड़े रहते हैं!”

गणित अध्यापक दिल में कुढ़ गया क्योंकि वह उन लोगों को बहुत ही नापसंद करता था जो सपने देखा करते थे।

एक रात को उस शहर के ऊपर से एक गौरैया उड़ कर गई। उसके साथी कई सप्ताह पहले दक्षिण की ओर चले गए थे किंतु वह पीछे रुक गई थी क्योंकि वह एक बेंत के कुँज को प्यार करती थी। वह वसंत के पहले सप्ताह में मादक पंखों से जब एक पीली तितली के पीछे-पीछे नदी के किनारे उड़ रही थी तो उसने उस बेंत को देखा। वह उसके लंबे, पतले शरीर से आकर्षित होकर वहीं उतर गई और बात करने लगी—

“तुम मुझे प्यार करने दोगे?” गौरैया ने पूछा। बेंत ने धीमे से सिर हिला दिया। वह उसके चारों ओर उड़ने लगी। कभी-कभी उसके पंख जल से छू जाते थे और चाँदी की हल्की लहरियाँ मुस्करा देती थीं। यही उसका प्रणय संकेत था और यह सारे मधुमास तक चलता रहा।



“यह बिल्कुल बेकार का संबंध हैं!” दूसरी गौरियों ने कहा, “उसके पास न रुपये हैं न अमीर संबंधी!” इसलिए पतझड़ आते-आते अन्य सभी गौरियाँ उड़ गईं। यह गौरैया बहुत अकेलापन महसूस करने लगी और इस प्यार से उसकी तबीयत भी ऊब गई। “यह बोलना तो जानता ही नहीं और इसमें कोई व्यक्तित्व भी नहीं! हवा के हर झोंके पर यह झूम उठता है। सच बात तो यह है कि यह बिल्कुल घरेलू है और मैं हूँ सदा उड़नेवाली। मेरा इसका क्या साथ?” उसने पूछा, “क्या तुम मेरे साथ आओगे?”

बेंत ने सिर हिला दिया।

“ओह, मैं अभी तक प्रेम में मूर्ख बन रही थी!” उसने चीखकर भावुक स्वर में कहा— “मैं अब दक्षिण में जा रही हूँ निराश होकर! अच्छा अलविदा!”

दिनभर उड़ने के बाद वह रात को नगर के समीप पहुँची। “मैं ठहरूँ कहाँ?” उसने कहा। “मैं समझ रही थी शहर मेरा स्वागत करेगा!”

इतने में उसने स्तंभासीन मूर्ति देखी।

“आहा! मैं यहीं ठहरूँगी! यह बहुत अच्छा स्थान है। यहाँ काफ़ी साफ़ हवा आ रही है।” और वह मूर्ति के पैरों के पास उतर पड़ी।

उसने चारों ओर देखकर कहा, “मेरा श्यनागार सोने का है।” और वह पंखों में मुँह छिपाकर सोने जा रही थी कि एक पानी की बड़ी-सी बूँद टप से उस पर गिर पड़ी। ‘ताज्जुब है’ उसने कहा, “आकाश में एक भी बादल नहीं है, तारे साफ़ चमक रहे हैं, फिर भी पानी बरस रहा है, बेंत को वर्षा पसंद थी, मगर आह! वह तो बड़ा स्वार्थी था।”

इतने में दूसरी बूँद गिरी, “इस प्रतिमा से फायदा क्या अगर यह वर्षा भी नहीं रोक सकती।” उसने कहा, “चलो कोई दूसरा आश्रय स्थान ढूँढ़ें।”

उसने पंख खोले और तीसरी बूँद गिर पड़ी। उसने ऊपर देखा।

राजकुमार की आँखों में आँसू थे और उसके सुनहले गाल पर आँसू ढलक रहे थे। उसका चेहरा इतना भोला था कि गौरैया को दया आ गई।

“तुम कौन हो?” उसने पूछा!

“मैं सुखी राजकुमार हूँ!”



“फिर तुम रो क्यों रहे हो!” पंख फड़फड़ाकर गौरैया ने कहा, “तुमने तो मुझे बिल्कुल भिगो दिया।”

मूर्ति ने उत्तर दिया— “जब मैं जीवित था और मेरे वक्ष में मनुष्य का हृदय धड़कता था तब मेरा आँसुओं से परिचय नहीं हुआ था। मैं आनंद महल में रहता था जहाँ दुख को प्रवेश करने की इजाजत नहीं थी। दिन में मैं अपने उद्यान में विलास करता था और रात को नृत्य में लगा रहता था। मेरे उद्यान के चारों ओर एक प्राचीर थी किंतु मेरे चारों ओर इतना सौंदर्य था कि मैंने कभी बाहर देखने का प्रयत्न नहीं किया। मैं जीवनभर प्रमाद में रहा और मर गया। आज जब मैं मर गया हूँ तो उन्होंने मुझे इतने ऊँचे पर स्थापित कर दिया है कि मैं संसार की सारी कुरूपता और दुख-दर्द देख सकता हूँ। मेरे ही नगर में इतना दुख है कि यद्यपि मेरा हृदय जस्ते का है मगर फिर भी फटा जा रहा है!”

“अच्छा तो राजकुमार ठोस सोने का नहीं है!” गौरैया ने सोचा, मगर वह इतनी शिष्ट थी कि उसने यह बात जोर से नहीं कही।

“दूर, बहुत दूर” मूर्ति अपनी सुनहली आवाज़ में कहती रही, “एक गंदी-सी गली में एक टूटा-फूटा मकान है, उसकी एक खिड़की खुली है, उसके अंदर एक चौकी पर एक स्त्री बैठी है। उसका चेहरा दुबला और थका हुआ है और उसके हाथ सुई के धावों से क्षत-विक्षत हैं। वह रानी की सर्व सुंदरी अंग-रक्षिका के नृत्यवसन पर फूल काढ़ रही है। एक कोने में उसका बच्चा बीमार पड़ा है। उसे ज्वर है और वह फल माँग रहा है। गौरैया, नन्हीं गौरैया क्या तुम मेरी तलवार की मूठ में जगमगाता हुआ लाल निकालकर उसे नहीं दे आओगी, मेरे पैर तो इस स्तंभ में जड़े हैं और मैं चल नहीं सकता!”

“दक्षिण देश में मेरे साथी मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं। वे नील नदी पर उड़ रहे होंगे। और कमल के फूलों से वार्तालाप करने के बाद राजाओं के मकबরों में सोते होंगे। राजा रंगीन ताबूत में सो रहा होगा। वह पीले वस्त्र में लिपटा होगा और मसालों से उसका अंग लेपन किया गया होगा। उसकी गर्दन में पुखराज का हार होगा और उसके हाथ सूखी पत्तियों की तरह होंगे!” गौरैया ने कहा।

“गौरैया! गौरैया! सिर्फ आज रात को तुम मेरा काम कर दो। बच्चा प्यासा है और उदास भी है!”



“उँह! मुझे बच्चों से ज़रा भी स्नेह नहीं है!” गौरैया ने कहा, “पिछले वसंत में दो बच्चे रोज़ आकर मुझे ढेले मारा करते थे। यद्यपि मुझे चोट नहीं लगी, मैं बहुत तेज़ उड़ती हूँ, किंतु यह बड़ी ही अपमानजनक बात है।”

मगर राजकुमार इतना उदास था कि गौरैया को दया आ गई, “यहाँ बहुत सर्दी पड़ने लगी लेकिन कोई बात नहीं। मैं आज तुम्हारा काम कर दूँगी!”

“धन्यवाद, नन्हीं गौरैया!” राजकुमार ने कहा।

गौरैया ने राजकुमार की तलवार की मूठ से लाल निकाला और अपनी चोंच में दबाकर उड़ चली। उड़ते वक्त वह गिरजाघर के शिखर के पास से गुज़री जहाँ श्वेत संगमरमर से देवदूतों की मूर्तियाँ बनी थीं। वह उच्च प्रासाद के समीप से गुज़री और उसने नाच की आवाज़ सुनी! छज्जे पर एक सुंदर किशोरी अपने प्रेमी के कंधे पर हाथ रखे हुए आई!

“आह! तारे कितने सुंदर हैं, प्रेम की शक्ति भी कितनी अद्भुत है,” उसने भावोन्मेष में कहा, “मैं समझती हूँ कि अगले नृत्य के लिए मेरे वस्त्र तैयार हो जाएँगे।” उसने जवाब दिया, “मैंने उस पर फूल कढ़वाने की आज्ञा दी है। मगर ये लोग कितनी देर लगाते हैं!”

वह नदी पर से गुज़री और जहाज़ के शिखरों पर लटकते हुए आकाशदीप देखे। अंत में वह उस टूटे-फूटे मकान के समीप पहुँची और भीतर झाँका। बच्चा बुखार के कारण बिस्तर पर तड़प रहा था। वह फुदककर भीतर पहुँची और उसने स्त्री के पास की मेज़ पर लाल रख दिया। माँ थककर सो गई थी। वह बच्चे के सिरहाने उड़कर पंखों से हवा करने लगी। “आह कैसा अच्छा लग रहा है!” बच्चे ने कहा, “अब शायद मैं अच्छा हो रहा हूँ!” और वह सो गया।

गौरैया उड़कर राजकुमार के पास वापस आ गई और उसने उसे सब हाल बताकर कहा, “आश्चर्य है, यद्यपि इतनी ठंडक है लेकिन मुझे ज़रा भी ठंडक नहीं लग रही है!”

“इसीलिए कि तुमने आज एक भलाई की है,” राजकुमार ने कहा। गौरैया सोचने लगी और सो गई। सोचने में उसे सदा झपकी आ जाती थी।

जब दिन उगा तो वह नदी में गई और नहाई। “अरे! इन दिनों गौरैया! ताज्जुब है,” एक जीवशास्त्री ने कहा जो पुल से गुज़र रहा था और उसने स्थानीय समाचार-पत्र के



संपादक को एक बड़ा लंबा पत्र लिखा। मगर वह इतना गंभीर और विद्वत्तापूर्ण था कि किसी की समझ में नहीं आया, इसीलिए लोग उसके उद्धरण रटने लगे।

“अच्छा आज रात को मैं मिस्र देश जाऊँगी!” उसने सोचा। वह आज उमंगों से भरी थी। उसने शहर की सभी इमारतें घूम डालीं और वह गिरजाघर के शिखर पर बहुत देर तक बैठी रही।

जब चाँद उगा तो वह राजकुमार के पास गई और बोली, “तुम्हें मिस्र में किसी से कुछ कहलाना तो नहीं है, मैं अभी-अभी जाने के लिए तैयार हूँ।”

“गौरैया! गौरैया! नन्हीं गौरैया! क्या तुम आज रात को और नहीं ठहर सकती?” मूर्ति ने कहा, “शहर में, दूर एक सीली हुई कोठरी में मुझे एक तरुण कलाकार दिख रहा है। वह अपनी कागज़ों से लदी मेज़ पर झुका है और उसके बगल में एक पात्र में सूखे हुए फूल लगे हैं। उसके बाल भूरे और सुनहले हैं, उसके होंठ अनार के फूल की तरह लाल हैं, उसकी आँखें बड़ी सपनीली हैं, वह रंगमंच के लिए नया नाटक लिख रहा है, मगर ठंडक के कारण उसकी अँगुलियाँ नहीं चल रही हैं। अंगीठी में एक भी कोयला नहीं है और भूख से उसकी आँखों के सपने टूट रहे हैं।”

“मिस्र में सब मेरी प्रतीक्षा कर रहे होंगे। कल मेरे सब साथी दूसरे प्रपात तक उड़ जाएँगे। जहाँ नरकुल की झाड़ियों में दरियाई घोड़े सोते हैं और संगमूसा की शिला पर मेम्नान का देवता बैठा है। रातभर वह तारों की ओर देखता है। कि भोर का तारा जब डूबने लगता है तो वह खुशी से चीख पड़ता है और फिर चुप हो जाता है। दोपहर के समय वहाँ शेर आते हैं, जिनकी आँखें हरे रत्नों की तरह चमकती हैं और जिनकी गरज में प्रपात का स्वर डूब जाता है।”

“लेकिन केवल आज रात के लिए भी तुम न रुकोगी!”

“अच्छा आज मैं और रुक जाऊँगी, क्या दूसरा लाल उसे दे आऊँ!” गौरैया ने पूछा। “अफ़सोस! मेरे पास अब कोई दूसरा लाल नहीं है। मेरे पास मेरी आँखें हैं जो नीलम की बनी हैं जो हजारों वर्ष पहले भारत से लाए गए थे। उसे निकालकर उसे दे आओ। वह उसे बेचकर ईंधन और खाना खरीद लेगा।”

“प्यारे राजकुमार” गौरैया ने सिसकते हुए कहा, “यह तो मुझसे नहीं होगा।” और वह फूट-फूटकर रोने लगी।



“गौरैया! प्यारी गौरैया!” राजकुमार बोला, “तुम्हें मेरी आज्ञा माननी चाहिए।”

गौरैया ने उसकी आँख का नीलम निकाल लिया और कोठरी की ओर उड़ चली। एक छेद से वह अंदर घुस गई। कलाकार सिर झुकाए बैठा था अतः उसने उसके पंखों की आवाज़ नहीं सुनी। जब उसने सिर उठाया तो देखा मुझ्राए हुए फूलों पर बड़ा-सा नीलम रखा था।

“ओह, मालूम होता है लोग मेरी कीमत समझने लगे हैं यह शायद किसी बड़े भारी प्रशंसक ने भेजा है। अब मैं अपना नाटक समाप्त कर लूँगा!”

अगले दिन गौरैया बंदरगाह की ओर जाकर एक जहाज़ के मस्तूल पर बैठ गई। वहाँ कुछ मजदूर अपने सीने पर रस्सियाँ बाँधे नाँवें खींच रहे थे।

जब चाँद उगा तो वह राजकुमार के पास आकर बोली, “मैं तुमसे विदा माँगने आई हूँ!”

“गौरैया, प्यारी गौरैया! क्या आज रात को और नहीं ठहरोगी?”

“देखो, अब जाड़ा पड़ने लगा है। मिस्र में हरे-भरे खजूर के कुंजों पर गर्म धूप छाई होगी। मेरे साथी एक पुराने मंदिर में घोंसला बना रहे होंगे। प्यारे राजकुमार, मैं जा रही हूँ मगर मैं तुम्हें भूल नहीं सकती। अगले वसंत में जब मैं लौटूँगी तो तुम्हारे लिए एक लाल और एक नीलम लेती आऊँगी।”

“नीचे गली में” राजकुमार ने कहा, “एक लड़की खड़ी है। उसका सौदा नाली में गिर गया है और वह रो रही है। यदि वह खाली हाथ घर जाएगी तो उसका पिता उसे मारेगा। उसके पैरों में जूता नहीं है, उसका सिर नंगा है। मेरी दूसरी आँख निकालकर उसे दे दो तो वह मार से बच जाएगी।”

“कहो तो मैं आज रातभर और रुक जाऊँ मगर मैं तुम्हारी आँख नहीं निकालूँगी। फिर तो तुम बिल्कुल ही अंधे हो जाओगे!”

“गौरैया! प्यारी गौरैया!” राजकुमार ने कहा, “मैं जो कुछ कहता हूँ उसे करो।”

उसने उसकी आँख निकाल ली और रोती हुई लड़की के हाथ में वह नीलम रख दिया। “वाह कैसा रंगीन काँच है!” लड़की ने कहा और हँसकर घर की ओर भागी।

गौरैया वापस आई।



“अब तुम अंधे हो।” उसने कहा, “इसीलिए मैं हमेशा तुम्हारे साथ रहूँगी।”
“नहीं-नहीं, गौरैया अब तुम मिस्र देश को जाओ।”

“मैं तुम्हें नहीं छोड़ूँगी।” गौरैया ने कहा और उसके पैरों पर सिर रखकर सो गई।

अगले दिन वह राजकुमार के कंधों पर बैठकर भाँति-भाँति की कहानियाँ सुनाने लगी— लाल बगुले की कहानी जो नील नदी के किनारे कतार में खड़े रहते हैं और मौका पाते ही झपटकर सुनहली मछलियाँ चोंच में दबाकर उड़ जाते हैं, स्फिन्क्स की मूर्ति की कहानी, जो रेगिस्तान में रहती है और सर्वज्ञ है, चंद्रमा की घाटियों के राजा की कहानी जो बड़े से संगमरमर की पूजा करता है, और उस हरे साँप की कहानी तो डालियों में लिपटा रहता है और बीसियों पुरोहित उसे दूध पिलाते हैं।

“प्यारी गौरैया, तुमने मुझे इतनी आश्चर्यजनक वस्तुएँ बताईं लेकिन इनसे भी ज्यादा आश्चर्यजनक है मनुष्य का दुख-दर्द। दुख से बड़ा कोई रहस्य नहीं। जाओ मेरे नगर को देखकर बताओ वहाँ क्या हो रहा है।”

गौरैया शहर के ऊपर उड़ने लगी। अमीर अपने महलों में रंगरलियाँ मना रहे थे और गरीब हाथ फैलाए भीख माँग रहे थे। वह अँधेरी गलियों के ऊपर से उड़ी और उसने देखा कि भूखे बच्चे सूनी निगाहों से ज़र्द चेहरे लटकाए हुए देख रहे हैं। एक पुलिया के नीचे दो बच्चे सिकुड़े हुए बैठे हैं, “भागो यहाँ से!” चौकीदार बोला और वे बारिश में भीगते हुए चल दिए।

वह वापस आ गई और उसने राजकुमार को यह सब हाल बताया।

“मैं सोने से मढ़ा हूँ” राजकुमार बोला, “इसमें से स्वर्णपत्र निकालकर मेरी निर्धन प्रजा में बाँट दो!”

गौरैया एक के बाद दूसरा स्वर्णपत्र निकालकर बाँटती रही, अंत में राजकुमार बिल्कुल मटमैला और मनहूस दिखने लगा। लेकिन बच्चों के चेहरे पर गुलाबी किरणें झलक आईं और वे गलियों में खेलने लगे।

उसके बाद ओले गिरे और फिर पाला पड़ने लगा। सड़कें चमकदार बर्फ से ढँककर चाँदी की मालूम होने लगीं। छज्जों से बड़े-बड़े बर्फ के टुकड़े लटकने लगे। सभी फर के ओवरकोट पहनकर निकलने लगे।

बेचारी नन्हीं गौरैया ठंड से अकड़ने लगी; लेकिन वह उसे इतना प्यार करती थी कि उसे वह छोड़ नहीं सकती थी। अंत में उसे लगा कि अब उसके दिन करीब हैं।



अब उसके परो में केवल इतनी शक्ति शेष थी कि वह राजकुमार के कंधों तक एक बार उड़ सकती थी। “अलविदा! राजकुमार” वह बोली, “क्या तुम मुझे अपना हाथ चूमने दोगे?”

“ओहो! बड़ी खुशी हुई सुनकर कि आखिर तुम अब मिस्र देश जाने के लिए तैयार हो।”

“मिस्र नहीं मैं मृत्यु के देश जाने की तैयारी कर रही हूँ!”

और उसने राजकुमार को चूमा और मरकर उसके पैरों के पास गिर पड़ी।

इसी समय मूर्ति के अंदर से कुछ आवाज़ हुई, जैसे कुछ टूट गया हो। वास्तव में मूर्ति के अंदर जस्ते का दिल चटख गया था। इस समय पाला गज़ब का था।

दूसरे दिन मेयर अन्य सदस्यों के साथ टहल रहा था। जब वे वहाँ से गुज़रा तो मेयर ने उसकी ओर देखा और कहा, “कितनी भद्दी लग रही है यह प्रतिमा!”

“हाँ, कितनी भद्दी है!” सदस्यों ने कहा, जो हमेशा मेयर की हाँ-में-हाँ मिलते थे।

“उसकी तलवार से लाल गिर गया है, उसकी आँखें गायब हैं और उसका सोना उतर गया है। यह तो बिल्कुल पत्थर का भिखारी मालूम होता है!”

“बिल्कुल बिल्कुल पत्थर का भिखारी!” सदस्यों ने कहा।

“लो, उसके पैर पर एक चिड़िया भी मरी पड़ी है,” मेयर ने कहा, “कल घोषणा करवा दो कि यहाँ चिड़िया न मरने पावें।” सदस्यों ने फ़ौरन नोट कर लिया।

और उसके बाद उन्होंने मूर्ति हटा ली।

“चूँकि अब वह सुंदर नहीं, अतः उसका कोई उपयोग नहीं है!” नगर के एक सुप्रसिद्ध कलाविज्ञ ने कहा।

उसके बाद उन्होंने मूर्ति भट्टी में गलाई और कारपोरेशन की बैठक में यह प्रश्न उठा कि इसका क्या किया जाए! “यहाँ पर एक दूसरी मूर्ति होनी चाहिए” मेयर ने कहा, “मैं समझता हूँ, मेरी!” हरेक सदस्य ने कहा और वे बराबर झगड़ते रहे।

लोहा गलाने के कारखाने में मिस्त्री ने कहा, “कैसा अचरज है, यह टूटा हुआ जस्ते का दिल भट्टी में पिघल ही नहीं रहा है!”

उसने एक कूड़ेखाने में उसे फेंक दिया, वहीं गौरैया की लाश भी पड़ी थी।



ईश्वर ने अपने देवदूत से कहा, “मेरे लिए नगर की दो सबसे मूल्यवान वस्तुएँ ले आओ।” देवदूत वह जस्तै का दिल और गौरैया (की लाश) ले आया।

“ठीक, बिल्कुल ठीक!” ईश्वर ने कहा, “मेरे स्वर्ग की डालों पर यह गौरैया सदा चहकेगी और मेरे उपवन में राजकुमार सदा विहार करेगा।”

अनुवाद— धर्मवीर भारती

संवाद

1. गौरैया राजकुमार की मूर्ति की निष्ठा और पर दुख-कातरता को न चाहते हुए भी रुक जाती है। यह बात मूर्ति और गौरैया के बीच किस तरह के संबंध को दर्शाती है?
2. गौरैया अपने जीवन को संकट में डालकर भी मूर्ति के साथ रहना स्वीकार करती है। इस आधार पर गौरैया की करुणा पर अपने विचार लिखिए।





दुख

अंतोन चेखव

चेखव की गिनती दुनिया के महान कहानीकारों में होती है। जारकालीन रूस की यह कहानी एक ताँगेवाले के गहरे दुख की कथा है, जिसमें ताँगेवाला अपने जवान बेटे की मृत्यु का दुख हर किसी से साझा करना चाहता है, लेकिन सुनने वाला कोई नहीं मिलता। अंत में वह अपने घोड़े से ही अपना दुख कहकर मन हल्का कर लेता है। चेखव की इस कहानी का अनुवाद राजकुमार राकेश ने 'दुख' शीर्षक से किया है।

निज व्यथा का से कहूँ?...

शाम ढल आई थी। अभी-अभी जल उठी बत्तियों के गिर्द बड़े और गीले बर्फ के फाहे सुस्ती से छितरा रहे थे तथा घरों की छतों पर, घोड़ों की पीठ पर, लोगों के



कंधों और टोपों पर बर्फ़ की यही पतली-नरम तह जम गई थी। आयोना पोतायाँव नाम का कोचवान भूत की तरह सफ़ेद हो गया था। वह दोहरा होकर ताँगे की डिग्गी में गतिहीन-सा बैठा था। वह अपने शरीर को उतना मोड़ चुका था, जितना कोई भी जीवित शरीर मुड़ सकता है। यदि उसके ऊपर बर्फ़ का पूरा तोदा भी गिर जाता। तब भी शायद वह उसे अपने शरीर पर से हटाने की कोशिश न करता... उसकी बूढ़ी घोड़ी भी सफ़ेद और गतिहीन हो गई थी। उसकी निर्जीव काया, मुड़ा शरीर और डंडे की तरह ऎंठ चुकी उसकी टाँगों में बेचारी घोड़ी की प्रतिच्छाया जैसी दिख रही थी जैसे संभवतः वह गहरे सोच में डूब गई हो। किसी खुशगवार और हरीतिमा में जीनेवाले किसी जीव को इन डरावनी रोशनियों, चीखों-चिल्लाहट और बदहवास भागते लोगों से भरे माहौल में झोंक दिए जाने पर वह अपनी किस्मत पर रोने के सिवाय और कर भी क्या सकता है।

आयोना और उसकी घोड़ी यहाँ बहुत देर तक मौजूद थे। वे रात के खाने से पहले ही इधर आ गए थे और अभी तक सवारी के इंतज़ार में थे। शहर के ऊपर अँधेरा छाने लगा था। गलियों में हल्के प्रकाश से जलती बत्तियाँ जैसे प्रकाश की प्रखरता को जलाए जा रही थी और गलियों में हो रही हलचल शोर में बदलने लगी थी।

“ओ ताँगेवाले, बाईवर्ग जाना है” आयोना ने किसी को पुकारते हुए सुना, “ताँगेवाले!”

आयोना ने आँखें खोलीं और बर्फ़ से ढक आई अपनी पलकों को झपकाते हुए देखा, लंबा चोगा और हैट पहने कोई अफ़सर शायद उसे ही पुकार रहा था।

“बाईवर्ग जाना है” अफ़सर ने दोहराया, “क्या कर रहे हो तुम? सो रहे हो? मैंने कहा बाईवर्ग जाना है।”

प्रत्युत्तर में आयोना ने घोड़ी की लगाम खींची तो घोड़ी की पीठ और उसके अपने कंधों से बर्फ़ की परतें झड़ आईं। वह अफ़सर ताँगे में आकर बैठ गया। आयोना ने घोड़े को गतिशील करने के लिए अपने होंठ बिचकाए, अपनी गर्दन को बतख की तरह उचकाया, अपनी सीट पर थोड़ा-सा उठा और ज़रूरत से ज़्यादा, अपनी आदत से मज़बूर घोड़े को फटकारा। बूढ़ी घोड़ी ने भी अपनी गर्दन उचकाई, अपनी छड़ी की तरह कमज़ोर टाँगों को मोड़ा और हिचकती हुई चली।



अभी वह चला ही था कि आस-पास विचरती, अँधेरे में खोई भीड़ से कुछ गुस्से भरी आवाज़ें आने लगीं।...

“ओ पाजी। तुझे मालूम है किधर जा रहा है?”

“दाएँ चला”

“तुझे चलाना आता है कि नहीं? दाएँ चला” उसकी सवारी भी गुस्से से चीख पड़ी थी।

एक सभ्य गाड़ी के चालक ने उसे धक्का दिया; एक पैदल ने, जो सड़क पार कर और उसकी घोड़ी की नाक से टकरा गया था, आयोना को बर्फ़ झाड़ते हुए एक भद्दी-सी नज़र से ताका। बेचारा आयोना अपनी डिग्गी में दोहरा हुआ जैसे जलते कोयले पर बिल्ली डाल दी गई हो। अपनी कुहनियाँ दाएँ-बाएँ घुमाते हुए और भयभीत आँखों से उसे ताकते हुए, उसे यह समझ पाने में मुश्किल पेश आ रही थी कि इस वक्त वह कहाँ है और शहर की इस मरीचिका में वह क्या कर रहा है।

“क्या ये सब बदमाश लोग नहीं है” यात्री ने धीमी आवाज़ में कहा, “वे तुमसे जानबूझकर टकरा रहे हैं या ताँगे के नीचे आने की कोशिश में है! लगता है तुम्हारे खिलाफ़ कोई षड़यंत्र है।”

मुँह में कुछ बुदबुदाते हुए... आयोना ने पीछे मुड़कर इस यात्री की तरफ़ ताका। जाहिर था, वह कुछ कहना चाहता था, पर उसके गले से हल्की-सी खाँसी की आवाज़ के सिवाय कुछ नहीं निकला।

“तुम क्या कहते हो?” उस अफ़सर ने पूछा।

आयोना ने मुस्कराने के लिए अपना मुँह हिलाने की कोशिश की और अपना गला खंखारते हुए कहा, “हुज़ूर। मालूम हो मेरा बेटा... वह तीन दिन पहले मर गया।”

“ओह! कैसे मरा?”

आयोना पीछे की तरफ़ घूमा और बोला, “किसे पता है... शायद उसे बुखार था। वह तीन दिन तक अस्पताल में रहा और मर गया... भगवान की यही मर्जी थी।”

“ओ! गाड़ी घुमा!” अँधेरे में आवाज़ गूँजी, “तू देख नहीं रहा कि जा कहाँ रहा है? अपनी आँखों को इस्तेमाल तो करा।”

“तेज़ चल” यात्री ने आयोना से कहा, “इस गति से तो हम कल सुबह तक भी नहीं पहुँचेंगे। कोड़े मार कर घोड़ी दौड़ा।”



आयोना ने अपनी गर्दन एक बार फिर उचकाई, अपनी सीट से तनिक उपर उठा और एक प्रिय-सी लगनेवाली गति से घोड़े को फटकार दिया। वह यात्री पर नज़र डालने के लिए बार-बार घूमा, पर उसने अपनी आँखें बंद कर ली थीं और कुछ भी सुनने के मूड में नहीं था। जब वह अपने गंतव्य पर उतरा, आयोना एक शराबखाने के बाहर रुक गया और दोहरा होकर, पहले की तरह गतिहीन-सा दुबक गया... गीली बर्फ़ से वह और उसकी घोड़ी ढंकने लगे... एक घंटा बीता, फिर एक और...

रास्ते पर पैर पटकते और आपस में झगड़ते तीन युवक घोड़ी के सामने आ खड़े हुए। उसमें से दो लंबे और छरहरे थे तथा तीसरा नाटा-सा था।

“कोचवान, पोलिटजेस्की पुल तक चलो”, नाटे कदवाला कड़कती-सी आवाज़ में बोला, “हम तीनों को ले जाने के लिए बीस कोपेक मिलेंगे।”

आयोना ने लगाम खींची और अपने होंठों को उसी जानी पहचानी, फुसफुसाती आवाज़ में हिला दिया। वैसे तो बीस कोपेक बहुत कम थे, पर तर्क कर पाने की उसकी क्षमता नहीं थी। बस, सवारी मिलती रहनी चाहिए, फिर एक रूबल और पाँच कोपेक उस के लिए बराबर थे। दो व्यक्तियों के लिए बनी सीट पर बैठने के लिए वे तीनों एक-दूसरे को धकियाते हुए अपने लिए जगह बनाने की कोशिश करने लगे। तीनों में से कौन खड़ा रहे इस पर खासी सिर-खपाई हुई काफ़ी देर की धींगामुश्ती, धक्केशाही और अंततः सहमति के बाद यह तय हुआ कि नाटे कदवाला, क्योंकि वह सबसे छोटा है, इसीलिए उसे खड़े होकर यात्रा करनी होगी।

“तो अब चलो,” नाटे ने आयोना से पीछे खड़े होकर और उसकी गर्दन पर अपनी गर्म साँस छोड़ते हुए कड़क आवाज़ में कहा, “घोड़ी पर कोड़ा मार! अरे भाई! तेरा यह टोप कितने गजब का है! सेंट पीटसवर्ग में इससे अधिक सड़ा हुआ दूसरा टोप हो ही नहीं सकता...”

आयोना ने ‘खी-खी...’ की आवाज़ निकालते हुए कहा, “मेरे लिए ठीक है।”

“छोड़ यार। मेरे लिए ठीक है। घोड़ी को कोड़ा मार। क्या इसी तरह पूरे रास्ते सरकता रहेगा? है? या ज़रा गाल पर दूँ?”

“मेरा सिर फट रहा है,” उन दोनों में से एक ने कहा।

“ज़रा इसकी बात तो सुनो, इसका सिर फट रहा है”, गुस्से से दूसरे बैठे आदमी ने कहा।



“खुदा गवाह है। मैं सच बोल रहा हूँ...।”

“क्या पिस्सू को कभी खाँसते सुना है। यह उतना ही सच है।”

आयोना ने दयनीयता से कहा, “खी-खी। आप लोग काफ़ी खुशमिज़ाज है।”

“ओ पाजी! गाड़ी चला,” नाटे आदमी ने तुनककर कहा, “तेज़ चलाएगा या नहीं? यह भी कोई चलाने का तरीका है? कोड़े का इस्तेमाल कर! प्रेत कहीं का। इस घोड़ी को ज़रा कसकर कोड़ा मारा।”

आयोना अपने पीछे खड़े, उस नाटे आदमी के बुलबुलाते जिस्म और उसकी थरथराती आवाज़ को अपने अंदर महसूस कर रहा था। वह अपने ऊपर पड़ती फटकार को सहता लोगों को ताकता और अपने दिल पर पड़े बोझ से मुक्त होता लग रहा था। वह नाटा व्यक्ति तब तक इसी तरह बोलता रहा, जब तक खाँसी के एक लंबे दौर ने उसकी बोलती बंद नहीं कर दी। पीछे बैठे दोनों आदमी किसी नादेत्वा पैट्रान्ना या किसी अन्य युवती के बारे में बातें कर रहे थे। आयोना ने पीछे घूमकर उन पर नज़र डाली। जैसे ही उनकी बातचीत में तनिक ठहराव आया, वह एक बार फिर पीछे मुड़ा और बोला—

“आप जाने तो मेरा बेटा, हाँ... वह तीन दिन पहले मर गया।”

“हम सबको मरना है”, खाँसी के दौर से मुक्त होने के बाद, नाटा व्यक्ति अपने होंठ पोंछता हुआ बोला, “तेज़ी से ताँगा चला। यारों, इस तरह रेंगते हुए चलना मुझे मंज़ूर नहीं है। क्या इस चाल से कभी हम पहुँच पाएँगे?”

“उसे ज़रा हौसला तो दो... कान पर!”

“ओ! सुना तूने? यदि तूने तेज़ी से घोड़ी को नहीं दौड़ा तो समझ ले तेरी गर्दन में अब ठोक दूँगा। यदि इसी तरह तेरे टाँगों में खड़ा होना था तो फिर पैदल जाना क्या बुरा था? बूढ़ा बैल! सुन रहा है मेरी बात?”

आयोना ने अपनी पीठ पर खांसने की आवाज़ों को महसूस करने की बजाय सुना।

“आप लोग कितने खुशमिज़ाज है...” उसने खी-खी करते हुए कहा, “भगवान तुम्हारा भला करें!”

“क्यों बे पाजी। तेरी शादी हो गई है?” पीछे बैठे दुबके-से एक आदमी ने पूछा। “किसकी, मेरी? कितने खुशमिज़ाज हैं।” आयोना हँस दिया अब तो यह धरती माँ



ही मेरे लिए एक अकेली औरत बची हैं... मेरा मतलब कब्र। मेरा बेटा मर गया और देखो मैं जिंदा हूँ... अजीब बात है। मौत भी दरवाजा भूल गई... मुझे ले जाने की बजाय मेरे बेटे को ले गई...”

वह अपने यात्रियों को यह बताने के लिए कि उसका बेटा कैसे मरा, पीछे की ओर मुड़ा, पर तभी उसे नाटे व्यक्ति ने ठंडी साँस छोड़ी और कहा कि आखिरकार वे अपने गंतव्य पर आ ही पहुँचे हैं। बीस कोपेक का सिक्का, अपनी मुठ्ठी में कैद करके वह उन्हें तब तक देखता रहा, जब तक वे नज़रों से ओझल न हो गए। वह अब फिर से अकेला था और खामोशी ने उसे एक बार फिर अपने घेरे में ले लिया था... व्यथा, जो कुछ देर के लिए घुल गई थी, अब वापस अधिक शिद्दत के साथ उसे घेरकर खड़ी थी। गली में चारों ओर बदहवास सी भागती भीड़ पर अपनी चिंतातुर दृष्टि डालते हुए आयोना इस आशा से भरा सोच रहा था कि आखिर कोई तो होगा, केवल कोई एक जो हज़ारों की इस भीड़ में रुककर उसकी बात सुनेगा। परंतु भीड़ तो उससे और उसकी व्यथा से बेखबर भागे जा रही थी। यदि आयोना की छाती इसी क्षण फट जाती और इस व्यथा की धार बह निकलती, तो यह पूरी दुनिया को बहा ले जाती, फिर भी इसे एक भी व्यक्ति देख नहीं पर रहा था। चाहे यह कितनी ही बड़ी क्यों न थी, यह एक ऐसे कठोर आवरण के भीतर छिपी बैठी थी कि कोई उसे देख नहीं सकता था...

उधर आयोना ने एक दरबान को जाते हुए देखा और उसके साथ बातचीत करने का मन बना लिया।

“आप बताएँगे, समय क्या हुआ है?” उसने पूछा।

“साढ़े नौ...। यहाँ रुकना मना है। आगे बढ़ो...”

आयोना थोड़ा आगे निकलकर फिर से दोहरा हो गया और व्यथा में खो गया लोगों से गुहार करना व्यर्थ है, उसने सोचा... पर अभी पाँच मिनट भी नहीं गुजरे थे, उसने कमर सीधी की, अपने सिर को झकझोर दिया जैसे गहरे ज़ख्म का दर्द महसूस हो रहा हो और लगाम खींच दी... दर्द अब असह्य हो चला था।

“वापस घुड़साल चल देना ठीक रहेगा”, उसने खुद से कहा, “वापस घुड़साला” और बूढ़ी घोड़ी, जैसे उसके मन की बात ताड़ गई, तेज़ी से चल दी। लगभग डेढ़ घंटे बाद आयोना बेहद गंदे स्टोव की बगल में था। बहुत से लोग आस-पास फ़र्श और बेंचो पर खर्राटे मार रहे थे। कमरा बदबूदार और घुटनभरा था। आयोना ने सो रहे उन



मित्रों को निहारा, अपनी कमर खुजाई और इतना शीघ्र इधर लौट आने के लिए खुद को धिक्कारने लगा...

“अभी तक तो चारा खरीदने तक के पैसे नहीं बनाए थे?” वह सोच रहा था, “इसीलिए मैं खुद को इतना दयनीय पाता हूँ आदमी जो अपने काम में दक्ष होता है... वह आदमी जिसके पास खाने के लिए और अपनी घोड़ी को खिलाने के लिए काफ़ी कुछ होता है, वह हमेशा सही होता है...”

एक किनारे सोया एक जवान-सा कोचवान नींद में बड़बड़ाता हुआ उठकर पानी के घड़े के पास पहुँचा।

“प्यास लगी है?” आयोना ने पूछा।

“लगता तो यही है,”

“अच्छा... इससे तुम्हारी प्यास बुझ जाए... भाई! सुनो, मेरा बेटा मर गया है। इसी हफ़्ते में। इस बारे में कुछ सुनना चाहोगे? अस्पताल में था... प्यारा।”

आयोना ने उस युवक पर यह देखने के लिए नज़र दौड़ाई कि उसने इस समाचार को कैसे ग्रहण किया है, पर उधर देखने के लिए कुछ खास बचा नहीं था। वह कंबल खींच कर सो चुका था। बूढ़े ने आह भरी और अपनी बगल में खुजली करने लगा... वह बोलते रहने की उतनी ही ज़रूरत महसूस कर रहा था। जितना कि वह युवक पानी पीने की। उसके बेटे को मरे लगभग हफ़्ता होने को आया था, पर अभी तक वह इस बारे में ठीक से किसी को भी बता नहीं पाया था। इस बारे में दिल खोलकर वह बातचीत करना चाहता था... वह बताना चाहता था कि उसका बेटा कैसे बीमार हुआ, कितनी पीड़ाजनक स्थिति में वह रहा। उसने अंतिम बार कौन-से शब्द कहे और उसकी मृत्यु कैसे हुई... वह उस शवयात्रा का वर्णन करना चाहता था और वह बताना चाहता था कि बाद में वह उस मृत आत्मा के कपड़े लाने किस तरह वापस अस्पताल गया था। उसके गाँव में उसकी पुत्री अनिस्वा घर में अकेली छूट गई है... उसे उसके बारे में भी बात करने का मन हो रहा था... अब कहने के लिए उसके पास कितना कुछ है। सुनने वाला मुव्तिला होकर सुनेगा, आहें भरेगा और पश्चाताप में डुबेगा... किसी औरत के साथ बात करना तो और भी बेहतर होगा। उन्हें भावुक करने के लिए कुछ शब्दों की ज़रूरत होती है।



“मैं जाकर ज़रा घोड़ी पर नज़र तो मार आऊँ” आयोना सोच रहा था, “सोने में अभी ऐसी क्या देर हुई है... जितनी नींद की मुझे ज़रूरत होगी, वह मैं जल्दी ही पूरी कर लूँगा....”

वह कोट पहनकर घुड़साल में अपनी घोड़ी के पास आ गया। वह चने, चारे और मौसम के बारे में सोच रहा था... अपने अकेलेपन में वह अपने बेटे के बारे में सोच पाने का जोखिम नहीं उठा सकता था... वह किसी से भी उसके बारे में बात कर सकता था, पर उसके बारे में सोचना और कल्पना में उसकी तस्वीर उतारना असहनीय व डरावना था...

“कुछ चबा रही हो?” आयोना ने घोड़ी की चमकती आँखों में देखकर पूछा, चबाओ... जब हम चने के लिए धन नहीं बना सकते तो चारा चबाना ही तो पड़ेगा हाँ... मैं तांगा दौड़ाने के काबिल नहीं रहा गया हूँ मैं बहुत बूढ़ा होता जा रहा हूँ... मेरे बजाय तो अब मेरे बेटे को तांगा चलाना चाहिए था... अब वहीं तुम्हारा सही चालक था... बशर्ते वह ज़िंदा होता...”

कुछ देर चुपचाप खड़े होने के बाद आयोना ने कहना शुरू किया, “प्यारी घोड़ी देखो तो यह क्या हुआ... वह अब नहीं रहा, मेरा बेटा कुज्मा अयोनिच... वह गया और अकारण मर गया... सोचो यदि तुम्हारा अपना बच्चा होता और मान लो वह अचानक मर जाता... तो तुम्हें दुख होता क्या नहीं?”

बूढ़ी घोड़ी चबाती, सुनती और अपने स्वामी के हाथों पर साँस छोड़ती रही और अपनी व्यथा के बोझ से दबा आयोना बोलता रहा तथा उसने अपनी पूरी व्यथा घोड़ी को सुना दी।

अनुवाद— राजकुमार राकेश

संवाद

1. इस कहानी में कोचवान अपनी बात आखिरकार घोड़े से क्यों कहता है? ऐसी परिस्थिति में आप अपनी बात किस से कहना चाहेंगे और क्यों?
2. मनुष्य का पशुओं से संबंध सामान्यतया उसकी उपयोगिता पर निर्भर है। इस कहानी में संबंध का कौन-सा नया पहलू उभरकर आया है?





भालू

विलियम फॉकनर

यह कहानी जंगली पशु और मनुष्य के संबंधों पर आधारित है। अपरिचित से डर लगता है। इसलिए मनुष्य जंगल और जंगली पशुओं से डरता है और पशु मनुष्य और उसकी दुनिया से। इस कहानी में शिकारी सहायक में भालू को देखने का कौतुहल है जिसे लेकर मारने और छोड़ देने के लिए बहस छिड़ी हुई है यही कौतुहल उसके मन में भालू और जंगल के प्रति डर को खत्म करने में सहायक होता है। अंत में वह बिना डरे चलते-फिरते, जीते-जागते भालू को देखने में कामयाब होता है। विलियम फाकनर की इस कहानी का अनुवाद हरि ने 'भालू' नाम से किया है।

उसकी आयु अब सोलह वर्ष थी। पिछले छह वर्षों से वह शिकारियों के साथ उनके सहायक के रूप में शिकार पर जाता था, इन छह वर्षों में उसे जंगल और उसके जंगली पशुओं के बारे में सब कुछ ज्ञात हो गया था।



उसे उस लंगड़े भालू के बारे में ज्ञात था, जो 100 वर्ग मील के क्षेत्र में निर्द्वन्द्व विचरा करता था और उसे कोई भी शिकारी पकड़ नहीं पाया था।

वह जिन शिकारियों के साथ शिकार पर जाता था, उनमें एक बुजुर्ग भालू के साथ क्या किया जाए, इस बारे में दो मत थे। एक मत के अनुसार, उस भालू को देखकर भी नहीं मारना चाहिए और दूसरे मत के अनुसार, उसे देखते ही मार डालना चाहिए; आखिर उसमें और दूसरे भालूओं में क्या फर्क है? हम जब उन्हें नहीं छोड़ते, तो उसे ही क्यों बर्खों?

वह उन सब शिकारियों का सहायक था और उसका अपना कोई मत न था। वह बस उसे देखना-भर चाहता था।

एक दिन उसे शिकारियों का एक ऐसा दल मिला जो जंगल के गहरे भाग में जाने को तैयार था।

चारों ओर घना अँधेरा छाया था, मूक और डरावना। ऐसे घने जंगल में अपने हाथ की बंदूक पर भी कोई भरोसा नहीं किया जा सकता।

सहसा, सैम नाम के एक बूढ़े शिकारी ने उसके कान में फुसफुसाकर कहा, “सुनो!” वह सुनने की कोशिश करने लगा। उसे किसी के हिचके हुए, अनिश्चय से भरे डगों की हल्की-सी चाप सुनाई दी। उसे सैम की फुसफुसाइट सुनाई दी, “यह वही लंगड़ा भालू है। वही सुपरिचित गंधा।” बूढ़ा सैम वर्षों से इसी जंगल में शिकार करने आता था और लंगड़े भालू की गंध और उसकी आदतों से भली-भांति परिचित था।

“हाँ, उसके चलने की हल्की-सी आवाज़ सुनाई तो दे रही है!”

मगर, बहुत कोशिश करने पर भी उस लंगड़े भालू के दर्शन नहीं हुए थे। अगली बार वह उन्हीं दिनों जंगल के इस भीतरी भाग में आया, तब उसके पास अपनी बंदूक थी।

इस बार वह अकेला ही था और बहुत तड़के की कैप से निकल पड़ा था। उसे बूढ़े सैम की नसीहतें याद थीं, “बेटा, घने जंगल में सबसे बड़ी सुरक्षा मिलती है निर्भय होने से। दूसरी बात यह याद रखना कि जंगल के पशु तुम पर तभी आक्रमण करेंगे, जब तुम उन पर हमला करने के इरादे से वहाँ गए हो। जंगली पशु न जाने किस अलौकिक शक्ति से आदमी के इन इरादों और डरपोकपन को भाँप जाते हैं!”



...तभी, उसे लगा, जैसे लंगड़ा भालू उसे देख रहा है।

वह चुपचाप खड़ा रहा हाथ में उस बेकार बंदूक को लिए, जिसका उपयोग, वह जानता था, वह भालू के खिलाफ़ कभी नहीं करेगा।

उसकी इस कोशिश के बावजूद कि वह निर्भय रहे, एक अज्ञात भय उसमें समाता जा रहा था। कहीं भालू ने उस पर हमला कर दिया तो..?

...और सहसा, उसे लगा कि भालू जैसे आया था, वैसे ही चला गया। उसका अज्ञात भय तब न जाने कहाँ खो गया, जब उसने एक झाड़ी से निकलते सैम को अपनी ओर आते देखा। उसने सैम को देखकर कहा, “मैं उसे नहीं देख पाया, सैम! हालाँकि, उसने शायद मुझे देख लिया है।”

“शायद नहीं, निश्चित देख लिया है। मैं उसे तुम्हें देखते देख रहा था।” जून के महीने की एक तपती दोपहर में आखिर उसने उस लंगड़े भालू को देख ही लिया।

इस बार वह उसे देखने के इरादे से नहीं आया था। वहाँ एक हिरण का पीछा करते-करते चला आया था।

दौड़ते-दौड़ते वह थक गया था और ज़मीन पर पड़े एक पेड़ पर बैठकर सुस्ता रहा था... कि वह उसे दिखाई पड़ा। उसे शांत और अविचल देखकर उसे लगा, जैसे वह उसे नहीं, उसकी तस्वीर को देख रहा हो। वह ठीक वैसा ही था, जैसी कल्पना उसने कर रखी थी। उतना ही बड़ा और शांत।

वह उसे देख रहा था कि न जाने कब और कैसे, वह चुपचाप न जाने कहाँ चला गया? चला नहीं गया, विलीन हो गया। अब उसे सिर्फ़ उसके पदचिह्न दिखाई दे रहे थे।

अनुवाद— हरि

संवाद

1. “जंगली पशु न जाने किस अलौकिक शक्ति से आदमी के इन इरादों और डरपोकपन को भाँप जाते हैं।” अपने आस-पड़ोस से जानने की कोशिश करें कि वे इस बात को कितना जानते हैं?
2. ऐसा क्या करना चाहिए कि पशु और मानव के बीच भय से उत्पन्न दूरी को खत्म किया जा सके?



लेखक परिचय

प्रेमचंद

जन्म — 1880, लमही, वाराणसी

प्रेमचंद हिंदी के श्रेष्ठ कथाकार हैं। इनका मूल नाम धनपतराय था। इन्होंने लगभग तीन सौ कहानियाँ एवं कई उपन्यास लिखे। इन्हें कथा सम्राट भी कहा जाता है। इनके कहानी व उपन्यासों में समाज के दुख-दर्द का यथार्थ चित्रण है। इन्होंने 'जागरण' तथा 'हंस' का संपादन और प्रकाशन कार्य भी किया।



प्रमुख रचनाएँ — इन्होंने सेवासदन, प्रेमाश्रम, रंगभूमि, निर्मला, कायाकल्प, गबन, कर्मभूमि, गोदान (उपन्यास); मानसरोवर (आठ खंड में, कहानी संग्रह); संग्राम, कर्बला, प्रेम की वेदी (नाटक) आदि की रचना की है।

निधन — 1936, वाराणसी, उत्तर प्रदेश।

महादेवी वर्मा

जन्म — 1907, फर्रुखाबाद, उत्तर प्रदेश

महादेवी वर्मा प्रमुख छायावादी कवयित्री हैं। इन्होंने निबंध, रेखाचित्र एवं संस्मरण भी लिखे हैं। इनकी रचनाओं में प्राणियों के प्रति स्नेह, सहानुभूति, करुणा एवं मानवीय संबंधों की प्रधानता है। इन्हें 'आधुनिक युग की मीरा' भी कहा जाता है।



प्रमुख रचनाएँ — इन्होंने दीपशिखा, नीहार, रश्मि, नीरजा, सांध्यगीत, यामा (काव्य-संग्रह); शृंगला की कड़ियाँ, क्षणदा, संकल्पिता, भारतीय संस्कृति के स्वर (निबंध-संग्रह); अतीत के चलचित्र, स्मृति की रेखाएँ, पथ के साथी, मेरा परिवार (संस्मरण/रेखाचित्र) आदि कृतियों की रचना की है।

प्रमुख पुरस्कार — इन्हें ज्ञानपीठ पुरस्कार, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान द्वारा भारत भारती पुरस्कार, पद्मभूषण आदि से विभूषित किया गया।

निधन — 1987, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश।



भीष्म साहनी



जन्म — 1915, रावलपिंडी, पाकिस्तान

भीष्म साहनी हिंदी साहित्य के प्रमुख कथाकार हैं। इनकी कहानियों में देश विभाजन का दंश, यथार्थबोध और मानवीय मूल्य की अभिव्यक्ति हुई है। इन्होंने 'नई कहानियाँ' पत्रिका का सम्पादन किया। वे प्रगतिशील लेखक संघ, अफ्रो एशियाई लेखक संघ और साहित्य अकादमी की एक्जिक्यूटिव कमेटी के सदस्य भी रहे।

प्रमुख रचनाएँ — इन्होंने भाग्यरेखा, पहला पाठ, भटकती राख, पटरियाँ, वाङ्मू, शोभायात्रा, निशाचर, पाली, डायन (कहानी-संग्रह); झरोखे, कड़ियाँ, तमस, बसंती, मय्यादास की माड़ी, कुंतो, नीलू नीलिमा नीलोफर (उपन्यास); माधवी, हानूश, कबिरा खड़ा बजार में, मुआवजे (नाटक); आज के अतीत (आत्मकथा); गुलेल का खेल (बालोपयोगी कहानियाँ) आदि की रचना की है।

प्रमुख सम्मान — इन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार, लेखक अवार्ड, लोटस अवार्ड, सोवियत लैंड नेहरू अवार्ड तथा पद्मभूषण आदि से विभूषित किया गया।

निधन — 2003, दिल्ली।

फणीश्वरनाथ 'रेणु'



जन्म — 1921, फारबिसगंज, बिहार

फणीश्वरनाथ 'रेणु' आंचलिक कथाकार के रूप में प्रसिद्ध हैं। इनकी रचनाओं में ग्रामीण वातावरण का चित्रण है। 'रेणु' ने अंचल-विशेष को अपनी रचनाओं का आधार बनाया। ग्रामीण शब्दावली एवं मुहावरेदार भाषा का प्रयोग इनकी रचनाओं की विशेषता है।

प्रमुख रचनाएँ — इनकी प्रमुख रचनाओं में मेला आंचल, परती परिकथा, दीर्घतपा, कलंक-मुक्ति, पलटूबाबू रोड, जुलूस (उपन्यास); ठुमरी, अग्निखोर, एक आदिम रात्रि की महक, एक श्रावणी दोपहरी की धूप, अच्छे आदमी (कहानी संग्रह); ऋणजल-धनजल (संस्मरण); नेपाली क्रांति कथा, वनतुलसी की गंध, एकांकी के दृश्य, उत्तर नेहरू चरितम् (रिपोर्ताज) आदि सम्मिलित हैं।

प्रमुख सम्मान — इन्हें पद्मश्री सम्मान से सम्मानित किया गया।

निधन — 1977



मोहन राकेश



जन्म — 1925, अमृतसर, पंजाब

मोहन राकेश महत्वपूर्ण नाटककार है। इन्होंने उपन्यास, कहानी, यात्रा वृत्तांत, निबंध आदि विधाओं में साहित्य रचना की है। कुछ वर्षों तक 'सारिका' पत्रिका के संपादक भी रहे।

प्रमुख रचनाएँ — इनकी प्रमुख कृतियों में आषाढ़ का एक दिन, लहरों के राजहंस, आधे-अधूरे (नाटक); अधेरे बंद कमरे, अन्तराल (उपन्यास); आखिरी चट्टान तक (यात्रावृत्तांत); परिवेश (निबंध); क्वार्टर तथा अन्य कहानियाँ (कहानी संग्रह); अण्डे के छिलके (एकांकी) आदि सम्मिलित हैं।

प्रमुख सम्मान — इन्हें संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

निधन — 1972, दिल्ली।

मालती जोशी



जन्म — 1934, औरंगाबाद, महाराष्ट्र

मालती जोशी प्रसिद्ध महिला कहानीकार हैं। इन्होंने व्यंग्य, रेडियो नाटक, अनुवाद संबंधी कार्य और बाल साहित्य का लेखन किया है।

प्रमुख रचनाएँ — इनकी प्रमुख रचनाओं में पाषाण युग, मध्यांतर, समर्पण का सुख, मन न भाए दस बीस, मालती जोशी की कहानियाँ, एक घर सपनों का, विश्वास गाथा, आखिरी शर्त, मोरी रंग दी चुनरिया, अंतिम संक्षेप, एक सार्थक दिन, शापित शैशव, महकते रिश्ते, पिया पीर न जानी, बाबुल का घर, औरत एक रात है, मिलियन डॉलर नोट (कहानी संग्रह); दादी की घड़ी, जीने की राह, परीक्षा और पुरस्कार, स्नेह के स्वर, सच्चा सिंगार (बालकथा संग्रह); पटाक्षेप, सहचारिणी, शोभा यात्रा, राग विराग (उपन्यास); हार्ले स्ट्रीट (व्यंग्य); एक और देवदास, टूटने से जुड़ने तक, कुहासे (मराठी कथा संग्रह) आदि महत्वपूर्ण हैं।

प्रमुख सम्मान — इन्हें भारतीय भाषा परिषद्, कोलकाता द्वारा रचना पुरस्कार, मध्य प्रदेश हिंदी साहित्य सम्मेलन द्वारा भवभूति पुरस्कार और पद्मश्री सम्मान आदि से विभूषित किया गया।



रवींद्र कालिया

जन्म — 1938, जालंधर, (पंजाब)

रवींद्र कालिया हिंदी के प्रसिद्ध कहानीकार, उपन्यासकार व संस्मरण लेखक हैं। इनकी रचनाएँ अपनी विशिष्ट भाषा एवं व्यंग्य शैली के लिए जानी जाती हैं। विभिन्न सामाजिक-साहित्यिक संस्थाओं के सदस्य रहने के साथ ही वे भारतीय ज्ञानपीठ के निदेशक भी रहे हैं।



प्रमुख रचनाएँ — इनकी प्रमुख कृतियों में खुदा सही सलामत है, 17 रानाडे रोड, ए.बी.सी.डी. (उपन्यास); नौ साल छोटी पत्नी, सत्ताईस साल की उम्र तक, गरीबी हटाओ, चकैया नीम, ज़रा-सी रोशनी, गलीकूचे, रवीन्द्र कालिया की कहानियाँ (कहानी संग्रह); कॉमेड मोनालिजा, स्मृतियों की जन्मपत्री, मेरे हमकलम, सृजन के सहयात्री, गालिब छूटी शराब (संस्मरण); नौद क्यों रातभर नहीं आती, तेरा क्या होगा कालिया, राग मिलावट मालकौंस (व्यंग्य) आदि सम्मिलित हैं।

प्रमुख सम्मान — इन्हें उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान का प्रेमचंद स्मृति सम्मान, मध्य प्रदेश साहित्य अकादमी द्वारा पदुमलाल बख्शी सम्मान, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान द्वारा साहित्यभूषण सम्मान, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान द्वारा लोहिया सम्मान और पंजाब सरकार द्वारा शिरोमणि साहित्य सम्मान आदि से सम्मानित किया गया।

निधन — 2016, दिल्ली।

उदय प्रकाश

जन्म — 1952, अनूपपुर, मध्यप्रदेश

उदय प्रकाश हिंदी के चर्चित कवि, कथाकार एवं फिल्मकार हैं। कथाकार के रूप में विशेष चर्चित होने के साथ वे अपनी पीढ़ी के महत्वपूर्ण कवियों में से एक हैं। इनकी रचनाओं का अनुवाद अनेक भाषाओं में हुआ है।



प्रमुख रचनाएँ — इनकी प्रमुख रचनाओं में सुनो कारीगर, अबूतर कबूतर, रात में हारमोनियम (कविता संग्रह); दरियायी घोड़ा, तिरिछ, दत्तात्रेय के दुख, पॉलगोमरा का स्कूटर, अरेबा परेबा और अंत में प्रार्थना, मोहनदास, पीली छतरीवाली लड़की (कहानी संग्रह); इंदिरा गांधी की आखिरी लड़ाई, कला अनुभव, लाल घास पर नीले घोड़े (अनुवाद) आदि महत्वपूर्ण हैं।

प्रमुख सम्मान — इन्हें भारत भूषण अग्रवाल पुरस्कार, ओम प्रकाश सम्मान, श्रीकांत वर्मा पुरस्कार, मुक्तिबोध सम्मान, पहल सम्मान, साहित्य अकादमी पुरस्कार और रूस का प्रतिष्ठित अंतर्राष्ट्रीय पूश्किन सम्मान आदि से विभूषित किया गया।



कैलाश बनवासी



जन्म — 1965, दुर्ग, छत्तीसगढ़

कैलाश बनवासी का आरंभिक लेखन बच्चों और किशोर वय से संबंधित है। इनकी सत्तर से भी अधिक कहानियाँ देश की विभिन्न प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं। इनकी कहानियों में ग्रामीण मध्यम वर्ग का चित्रण हुआ है।

प्रमुख रचनाएँ — इनकी प्रमुख कृतियों में लक्ष्य तथा अन्य कहानियाँ, बाज़ार में रामधन, पीले कागज की उजली इबारत, प्रकोप तथा अन्य कहानियाँ, जादू टूटता है, कविता, पेंटिंग पेड़ कुछ नहीं (कहानी संग्रह); लौटना नहीं है (उपन्यास) आदि महत्वपूर्ण हैं।

प्रमुख सम्मान — इन्हें श्याम व्यास पुरस्कार, प्रेमचंद स्मृति कथा सम्मान, वनमाली कथा सम्मान और गायत्री कथा सम्मान आदि से विभूषित किया गया।

ऑस्कर वाइल्ड



जन्म — 1854, डबलिन, आयरलैंड

शेक्सपीयर के बाद ऑस्कर वाइल्ड सर्वाधिक चर्चित उपन्यासकार, कवि और नाटककार हैं। इनके लेखन में जीवन की गहरी अनुभूतियाँ हैं। रिश्तों के रहस्य, पवित्र सौन्दर्य की व्याख्या एवं मानवीय धड़कनों की अनुभूति उनकी कहानियों की विशेषता है।

प्रमुख रचनाएँ — इनकी प्रमुख रचनाओं में द बैलेड ऑफ रीडिंग गोल, डी प्रोफनडिस, लेडी विंडरमर्स फेन, द इम्पोर्टेंस ऑफ बीइंग अर्नेस्ट, सलोमी (नाटक); द पिक्चर ऑफ डोरियन ग्रे (उपन्यास) आदि सम्मिलित हैं।

निधन — 1900, पेरिस, फ्रांस।



आंतोन चेखव

जन्म — 1860, तगानरोग, रूस

आंतोन चेखव रूसी कथाकार और नाटककार हैं। इनकी कहानियों में सामाजिक कुरीतियों का व्यंग्यात्मक चित्रण मिलता है। चेखव का प्रभाव अनेक रूसी लेखकों, बुकुनिन, कुप्रिन और गोर्की आदि पर स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

प्रमुख रचनाएँ — इनकी प्रमुख रचनाओं में रंगबिरंगी कहानियाँ (कहानी संग्रह); इवानव, चेरी के पेड़ों का बाग, तीन बहनें (नाटक); सुख, बाँसुरी, स्टेप, किसान (लघु उपन्यास); कुत्ते वाली महिला, भालू, दुल्हन, स्वीडिश दियासलाई (चलचित्र) आदि सम्मिलित हैं।

प्रमुख सम्मान — इन्हें सम्मानित अकादमीशियन की उपाधि से विभूषित किया गया।

निधन — 1904, रूस, मास्को।



विलियम फॉकर

जन्म — 1890, मिसिसिपी, अमेरिका

विलियम फॉकर प्रसिद्ध अमेरिकी रचनाकार हैं। अमेरिकी उपन्यास के क्षेत्र में वे कला की दृष्टि से अनूठे माने जाते हैं। फ्रांस में इनकी रचनाओं की परख अमेरिका से पहले की गई। हॉलीवुड में भी इनका योगदान महत्वपूर्ण रहा है।

प्रमुख रचनाएँ — इनकी महत्वपूर्ण कृतियों में द साउंड एंड द फ्यूरी, एज आई लेट डाइंग, लाइट इन अगस्त, द हैमलेट, द टाउन, द मेशन (उपन्यास); ए रोज फॉर एमिली, रेड लीक्स, द इवनिंग सन, ड्राई सितंबर (कहानी) आदि सम्मिलित हैं।

प्रमुख सम्मान — इन्हें साहित्य में नोबेल पुरस्कार (1949), फिक्शन के लिए पुलित्जर पुरस्कार और राष्ट्रीय पुस्तक पुरस्कार आदि से सम्मानित किया गया।

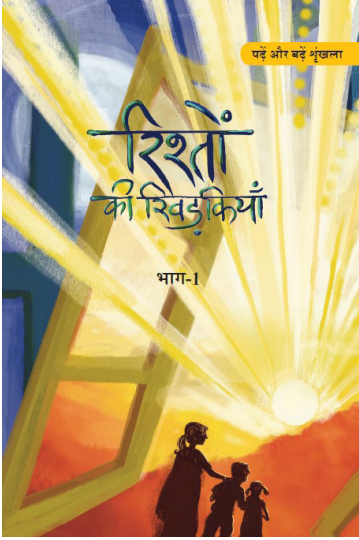
निधन — 1961, मिसिसिपी, अमेरिका।



टिप्पणी

टिप्पणी

‘पढ़ें और बढ़ें’ शृंखला की कुछ अन्य पुस्तकें

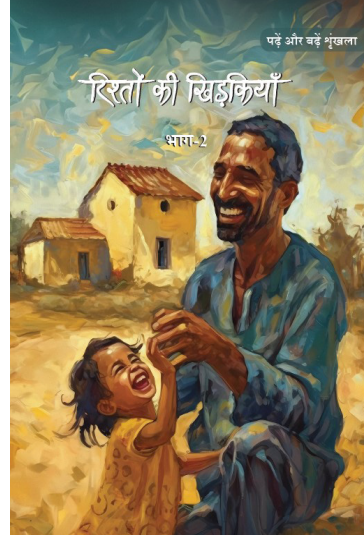


रिश्तों की खिड़कियाँ, भाग- 1

मूल्य – ₹ 110.00

कोड – 21190

ISBN – 978-93-5292-890-3

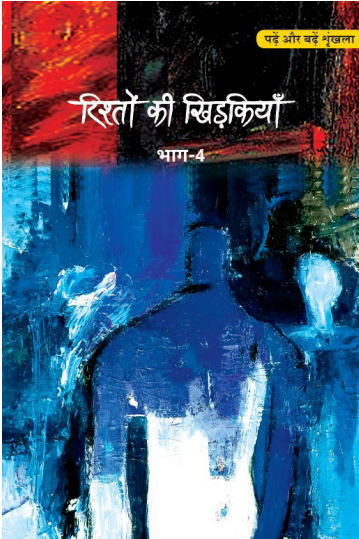


रिश्तों की खिड़कियाँ, भाग- 2

मूल्य – ₹ 110.00

कोड – 21191

ISBN – 978-93-5292-866-8

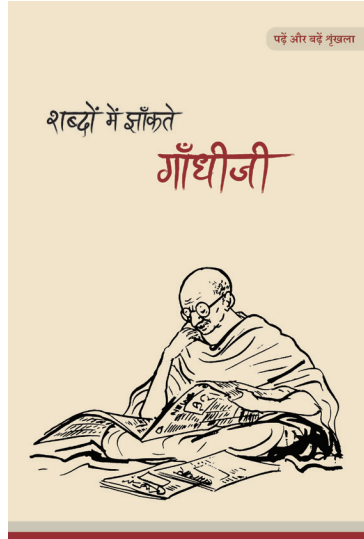


रिश्तों की खिड़कियाँ, भाग- 4

मूल्य – ₹ 155

कोड – 21193

ISBN – 978-93-5292-641-1



शब्दों में झाँकते गाँधीजी

मूल्य – ₹ 110.00

कोड – 21194

ISBN – 978-93-5292-821-7

21192

विद्यया ऽ मृतमश्नुते



एन सी ई आर टी
NCERT

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

ISBN 978-93-5292-813-2